पुष्पांजलि

जैन सस्कृति के महान् ज्योतिधर

परम पूज्य श्रीमज्जैनाचार्य विजयानन्दसूरीश्वरजी म

(श्री आत्मारामजी महाराज)

पुष्पांजलि

[कलिकालकल्पतरु, अज्ञानतिमिरतरणि, पंजाब-केसरी, परमपूज्य आचार्य भगवान श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज के पट्टालंकार, मरुधरोद्धारक, प्रखर शिक्षा-प्रचारक, अद्वितीय गुरुभक्त परम-पूज्य आचार्यदेव श्रीविजयललित सूरीश्वरजी महाराज का जीवनचरित।]

आशीर्वचन

परम पूज्य जिनशासनरत्न वर्तमान गच्छाधिपति, शान्तमूर्ति आचार्यदेव

श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी महाराज

प्रेरक एवं भूमिका लेखक

परम पूज्य मुनिभूषण मरुधररत्न, जिन शासन दीपक, मुनिराज

श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज

लेखक

जवाहरचन्द्र पटनी, एम. ए. (हिन्दी, अंग्रेजी)

वरिष्ठ हिंदी व्याख्याता

श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय, फालना (राज.)

प्रकाशक — श्री ललितसूरि स्मृति महोत्सव समिति
श्री वल्लभ विहार, फालना

पता — श्री वल्लभ विहार
फालना (राजस्थान)

प्रकाशन — दीपोत्सव, संवत् २०३३

प्रथम आवृत्ति — १०००

मूल्य — तीन रुपये

मुद्रक—अर्चना प्रकाशन
१, कालाबाग, अजमेर

समर्पण

। आत्मवल्लभ ललितसमुद्र सद्गुरुभ्यो नम ।

जैन सस्कृति के महान् ज्योतिर्धर, युगदिवाकर, महाप्रभावक,
पंजाब देशोद्धारक, न्यायाम्भोनिधि, परमपूज्य श्रीमज्जैनाचार्य
विजयानन्द सूरीश्वरजी (श्री आत्मारामजी महाराज) के
पट्टधर कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणि, भारत
दिवाकर, पंजाब केसरी परम पूज्य युगवीर आचार्यदेव
श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के
चरण-कमलो मे श्रद्धाभक्ति के कंचन सूत्र मे
गुम्फित यह 'पुष्पांजलि' सविनय समर्पित,
जिनकी महती कृपा से श्री जिनशासनरत्न
वर्तमान गच्छाधिपति, शांतमूर्ति आचार्य
देव श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी
महाराज के मंगल आशीर्वाद की
सुगन्ध तथा श्री मुनिभूषण,
मरुधर-रत्न, जिन शासन-
दीपक मुनिराज श्री
वल्लभदत्त विजयजी
महाराज की शुभ
प्रेरणा के फल
प्राप्त हुए ।

परमपूज्य आचार्य १००८ श्रीमद् विजय वल्लभसूरीश्वरजी महाराज

जन्म स १९२७ दीक्षा १९४४ स्वर्गवास स २०११

ॐ अर्हं नमः

आशीर्वचन

परम गुरुभक्त, स्वर्गीय आचार्य श्रीमद् विजयललितसूरीश्वर जी महाराज की जीवनोर्मियाँ सगृहीत होकर स्वय के कलेवर का निर्माण कर, ऐसी मेरी चिराकाक्षा थी। आशा प्रो० जवाहरचन्द्रजी पटनी की प्रतीक्षा मे थी। आशा का दीप लिये यह आशीषाभिलाषी गुरु-भक्त दिनाक २१-४-७६ को सुलतानपुर लोधी (जिला कपूरथला-पजाब) मे चरित्रनायक के चरित्र को सुनाने मेरे पास आये। पूज्य आचायश्री के जीवन रूपी उपवन मे जिस लेखक ने श्रद्धा-भक्ति का चचरीक बन विनय भाव से प्रत्येक पुष्प पौधे पर मडराकर रस ग्रहण किया हो, उसकी 'पुष्पाजलि' रसात्मक होगी ही, इसमे कोई सन्देह नही। जब मैंने तथा आचाय श्री विजयेन्द्रदिन्नसूरिजी एव अन्य मुनिराज वृन्द ने श्री पटनीजी द्वारा जीवन कथा को सुना, तब हम सब हर्ष-विभोर हो गये।

पटनी जी की भाव सयोजन पटुता चरित्र नायक के आद्यन्त जीवन को लिपिबद्ध करने मे सफल रही है। इस श्रमणोपासक लेखक के लोकप्रिय लेखन का परिचय आचार्य भगवान् श्रीमद् विजयवल्लभसूरीश्वर जी महाराज के जीवन (हिन्दी-अग्रेजी), बिखरे मोती तथा श्री वर्द्धमान महावीर पुस्तको से भली-भाति हो जाता है।

चरित्रनायक की गुरुभक्ति का परिचय हमे उन्ही क्षणो से उपलब्ध होता है जब उनके जीवन के क्षण गुरुदेव के द्वारा सस्थापित सस्थाओ का पुत्रवत् पालन करने मे व्यतीत हो रहे थे। वे सेवा के

क्षण 'प्रखर शिक्षा प्रचारक' पद के योग के क्षण थे। 'भग्धगोद्धारक' यह भी उनके जीवन के गुणों की विभूषा का प्रतीक है। उनकी भावविभोरता, अप्रतिम सगीत-साधना, सन्त तुकाराम का स्मरण कराती है। उनकी कुशाग्र मेधा सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, पजाबी आदि भाषाओ पर एकाधिकारिणी थी। इन समस्त गुणों को प्रकट करते हुए पटनीजी ने अत्यन्त सुन्दर जीवन-चरित्र की रचना की है। अत वे धन्यवाद के पात्र है।

मैं आदर्श गुरुभक्त मुनिभूषण श्री वल्लभदत्तविजयजी महाराज की हार्दिक प्रशसा करता हू कि वे इस शुभ कार्य के प्रेरक बने, जिनकी प्रेरणा से लेखक श्रम से क्लान्त नही हुआ क्योंकि ऐसे शुभ कार्य मगल-प्रेरणा के पचामृत से अभिषिक्त होकर आनन्द के कल्प पुष्प बन जाते है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह जीवन-चरित्र सत्कर्मों का प्रेरक एव भाव-भक्ति को उद्‌बुध करने मे सहायक होगा।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि 'पुष्पाजलि' निरतर जनगणमन प्रिय बने।

ॐ शान्ति

सुलतानपुर लोधी (जिला कपूरथला पजाब)
वीर सवत् २५०३, ज्येष्ठ वदि ६, शनिवार
दिनाक २२-५-७६

विजयसमुद्र सूरि

भूमिका

मरुभूमि मे सरस्वती मदिरो के प्रेरणास्रोत प्रात स्मरणीय कलिकाल-कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणि, पजाब केसरी परम-पूज्य आचार्य भगवान् १००८ श्री विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज के पट्टालकार मरुधरोद्धारक, प्रखर-शिक्षा प्रचारक, परम गुरु भक्त पूज्य आचायदेव १००८ श्रीमद् विजयललित सूरीश्वर जी महाराज के महान् उपकारो के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना प्रत्येक मरुवासी का परम पावन कर्त्तव्य है। परमपूज्य गुरुदेव के आदेश से उन्होंने मरुभूमि की अनेकानेक विद्या-पुष्पवाटिकाओ का वात्सल्यपूर्ण लालन-पालन किया था जो पुष्पित, पल्लवित होकर अनेक मधुर एव सुगधित फल-फूलो को प्रदान कर रही हैं जिससे समाज फल-फूल रहा है। ऐसे परमोपकारी प्रात स्मरणीय आचायदेव की स्मृति मे, जिनके महाप्रताप मे मरुधरा महिमा मडित हुई है, मेरे मन मे कुछ उपयोगी काय करने की मगल अभिलाषा जाग्रत हुई, फलस्वरूप 'आचार्य श्री ललितसूरि स्मृति समिति' का गठन किया गया। अनेक मागलिक काय जैसे—प्राचीन जैन मदिरो का जीर्णोद्धार, गोडवाड ओसवाल समाज का सगठन, गुरुभक्तो का सन्मान, सरस्वती मदिरो को आर्थिक सहायता, मरुधरोद्धारकजी के स्मारक का निर्माण, जीवन चरित्रालेखन, चित्राकन आदि कायक्रम सुचारु रूप मे सम्पन्न हुए हैं और हो रहे है। गोडवाड ओसवाल समाज ने सगठित होकर गुरुभक्ति का महान् आदश उपस्थित किया है। वे बधाई के पात्र हैं।

पूज्य आचाय श्री के जीवन-चरित्र का आलेखन कार्य प्रसिद्ध लेखक श्री जवाहरचद्र पटनी एम ए, हिन्दी व अग्रेजी, को सौंपा था। श्री पटनीजी ने बिखरे मोती, दिव्य जीवन और श्री वर्द्धमान

महावीर पुस्तके लिखकर जो यशोपार्जन किया है, उससे सब परिचित है ही। पूज्य आचार्यदेव, वर्तमान गच्छाधिपति श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी महाराज ने इस जीवन चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनके आशीर्वचन में यह बात सुस्पष्ट रूप से उल्लिखित है।

विद्वान लेखक ने खोज करके अत्यन्त कुशलतापूर्वक पूज्य आचार्य श्री के जीवन के बिखरे मोतियों को अपनी अन्वेषिणी अंतर्दृष्टि और श्रद्धाभक्ति से कला के कंचन-सूत्र में पिरोकर 'पुष्पांजलि' के रूप में जनता जनार्दन के सामने रखा है, एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

'पुष्पांजलि' की सुगन्ध जनमन को सद्‌गुणों से सुवासित करे, यही शुभेच्छा।

मुनि वल्लभदत्त विजय

बाली
जैन उपाश्रय
दिनांक १८-८-७६

प्रखर शिक्षा प्रचारक, मरुधरोद्धारक
आचार्य महाराज श्रीमद् विजय ललितसूरीश्वरजी
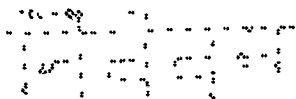
पूज्य चरणो मे वन्दना की और कृपासिंधु ने कर-कमल से शीश स्पर्श करते हुए सुधा शीतल वाणी मे कहा

'पटनीजी ! पूज्य मरुधरोद्धारक जी का जीवन चरित्र लिखो। उस महापुरुष के उपकार मरुभूमि के कण-कण मे बिखरे हुए हैं।'

मैंने सविनय पूछा "पूज्य गुरुदेव ! सामग्री का अभाव। दिव्य गुणरत्नो की उपलब्धि कैसे होगी और चरित्रालेखन कैसे सम्पन्न हो सकेगा ?"

पूज्यश्री के मुखमडल पर तेजस्विता थी। नयनप्रभा आनन्दामृत से सिक्त थी। स्मित हास खेल रहा था। श्री मुख से बोले "रत्नाकर के पास सुलतानपुर-लोधी (पजाब) जाओ, उनसे दिव्य जीवन सम्बन्धी गुणरत्न अपनी क्षमता के अनुसार लो।"

पूज्यश्री ने मगल आशीर्वाद का वासक्षेप जब मेरे मस्तक पर डाला, तब मेरा रोम-रोम हर्ष से नाच उठा। कृपासिंधु पूज्य मुनि भूषण, मरुधर-रत्न जिनशासन-दीपक, मुनिराज श्री वल्लभदत्त

विजयजी महाराज का पवित्र वासक्षेप प्राप्त कर, उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं रत्नाकर के पास सुलतानपुर लोधी (जिला कपूरथला–पजाब) पहुँचा। रत्नाकर तो रत्नाकर ही है 'न तस्य प्रतिमास्ति'–अनुपम और दिव्य। पूज्य मुनि भूषणजी ने मुझ पर अपार कृपा की कि रत्नाकर–समुद्र के दर्शन हुए।

रत्नाकर अर्थात् रत्न-भण्डार, परम पूज्य जिनशासन रत्न, वर्तमान गच्छाधिपति, आचार्य भगवान् श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वर जी महाराज। समुद्र-दर्शन का लाभ। अहा! वह प्रशान्त समुद्र–शान्त सुधारस से उत्फुल्ल। मुखमंडल पर सौम्यता छलक रही थी। मुखारविंद से शब्दामृत प्रवाहित हो रहा था। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध पीयूष-वाणी का पान कर रहे थे। व्याख्यान समाप्त हुआ। दिव्य चरण-सुमनों में मैंने शीश नवाया। कृपासागर की दृष्टि मुझ पर पड़ी, स्नेह भाव से कहा 'पटनीजी! आ गये। बहुत अच्छा।' परम पूज्य गुरुदेव की पीयूष वाणी अमृतधारा के समान अन्तर्मन में प्रवाहित हुई। आनन्द के अनेक पुष्प खिल उठे। गद्गद् वाणी में मैंने कहा "हाँ दीनदयालु! पूज्य मुनि भूषण जी ने इन दिव्य चरण-कमलों में भेजा है। परम पूज्य मरुधरोद्धारक आचार्यदेव श्रीमद् विजयललित सूरीश्वर जी महाराज का जीवन चरित्र लिख रहा हूँ। आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ।" इतना कहते ही मैंने दिव्य चरण छुए। भाव-विभोरता के कारण मेरे नेत्रों से आनन्दाश्रु ढुलक पड़े। मंगलमूर्ति ने आशीर्वाद दिया। जब पूज्य गुरुदेव ने अपने कर-कमल से मेरे मस्तक पर पवित्र वासक्षेप डाला और अपने कोमल कर से मस्तक को स्पर्श किया, तब ऐसी दिव्यानुभूति हुई मानो सहस्रदल कमल खिल गया हो और आनन्द का पराग झरने लगा हो। वह आनन्द वर्णनातीत है।

परम पूज्य मरुधरोद्धारकजी के जीवन चरित्र के कुछ अध्याय परम पूज्य जिन शासन रत्न आचार्य भगवान् और परम पूज्य

आचार्य देव श्रीमद् विजयेन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी तथा पूज्य मुनिराज वृंद ने मुझसे ध्यान पूर्वक सुने। वे प्रसन्न हो गये। मुझे आशीर्वाद दिया और मेरे आलेखन की प्रशंसा की।

मैं लघु घट हूँ, वे रत्नाकर है। लघुता जब महानता के पास जाती है, तब बाल चेष्टा कही जाती है। न तो मैं शब्द शिल्पी हूँ, न कला मर्मज्ञ हूँ, न मैं भाव और कल्पना का धनी हूँ, फिर भी पूज्य ललित के लालित्य को लिखने के लिए उद्यत हुआ हूँ। केवल भक्तिवश—

'त्वद् भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।

(—भक्तामर)

विनय चचरीक बन कर पहुँचा था पूज्य श्री के चरण-सरोजो मे। चरण सरोज अन्तशक्ति के अक्षय भण्डार।

परम पूज्य जिन शासन रत्न, वर्तमान गच्छाधिपति आचार्य भगवान् श्रीमद् विजय समुद्रसूरीश्वरजी महाराज ने मुझे चरित्रनायक सम्बंधी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान की, मेरा मार्गदर्शन किया और मेरे आलेखन की प्रशंसा कर मुझे प्रोत्साहित किया। कृपा सिंधु परम पूज्य जिन शासन रत्न आचार्य भगवान् की अनन्त कृपा अवर्णनीय है।

परम पूज्य मुनि भूषण, जिन शासन दीपक, मरुधर रत्न श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज के परमोपकार मेरे हृदय पट पर स्वर्णाक्षरो मे सदैव अंकित रहगे जो मुझे प्रतिपल प्रेरित करते रहे, मेरी रचना को ध्यानपूर्वक सुनते रहे, शुभ कार्य कलापो मे अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी 'पुष्पाञ्जलि' को कलात्मक, सुंदर व जीवनोपयोगी बनाने के लिए सतत निर्देश देते रहे, फल स्वरूप पुष्पाञ्जलि इस रूप मे प्रकट हो सकी।

'पुष्पाञ्जलि' इन्ही परमपूज्य महा मुनिवर्यों की कृपा का प्रसाद है। इनके महोपकार को प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नही। केवल श्रद्धापूर्वक इन महर्षियो के चरण-कमलो मे अनन्त प्रणाम करके ही आभार प्रदर्शित कर पा रहा हूँ।

उन समस्त सहयोगियो को हार्दिक धन्यवाद, जिन्होंने ज्ञाताज्ञात रूप से पुष्पाञ्जलि के रचनाकर्म मे मुझे सहायता दी है।

विजयादशमी
सम्वत् २०३२

चरणसेवक
जवाहरचन्द्र पटनी

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठाङ्क

मुख पृष्ठ चित्र परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयललित-सूरीश्वर जी महाराज का कलात्मक स्मारक।

फालना विद्यालय भवन के पीछे स्थित।

१

पारसमणि

पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। यह तभी सम्भव है जब लोहा पारसमणि के सम्पर्क मे आता है। पारसमणि का यह अनुपम गुण है। लोहा जड पदार्थ है, परन्तु वह भी उत्तम वस्तु के ससर्ग से स्वर्ण मे रूपान्तरित हो जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसे रासायनिक परिवर्तन कहते हैं। पारसमणि के समान महात्माओ के विषय मे जब हम कल्पना करते हैं, तब चैतन्य जीव की अद्भुत शक्ति का पता लगता है। चैतन्य प्राणी की तीन श्रेणियाँ शास्त्र-सम्मत हैं—१ ससारी जीव जिसे देहात्मा कहते हैं—वह अज्ञानवश देह-सुख को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है, उस पर मोह का आवरण इतना भारी-भरकम पडा रहता है कि वह क्षण भगुर सासारिक सुखो मे रचा-पचा रहता है। २ अन्तरात्मा—वह जीव है जो देह को आत्मा से पृथक् मानता है, वह ज्ञान-ध्यान की गगाधारा मे लीन रहता है और उसे अन्तत परम-सुख की प्राप्ति हो जाती है। ३ परमात्मा—अन्तरात्मा प्राणी अष्टकम जाल को तोडकर शुद्ध चैतन्य रूप हो जाता है, जिसे हम सिद्ध अथवा परमात्मा कहते हैं। चैतन्य प्राणी यद्यपि अपने पुरुषाथ से भयकर मोहाधकार से दिव्य प्रकाश मे पहुँचता है, परन्तु उसकी सफलता का श्रेय शुद्धदेव गुरु धम को है जो शुद्ध माग को बताते है। यदि शुद्ध एव सच्चा माग नही मिले तो मोह-ग्रसित जीव यात्री को जन्म-जन्मान्तर भव-भ्रमण करना पडता है—कभी नरकगति मे तो कभी तिर्यच गति मे, कभी

मनुष्य गति मे तो कभी देव गति मे। अनन्त काल तक भटकने के पश्चात् भी मुगति नही मिलती, इसलिए अनन्त कृपालु भगवान् अपने अनन्त लब्धिवत शिष्यरत्न गौतम स्वामी को उपदेश देते है—

एव भवससारे ससरइ,
सुहासुहेहिं कम्मेहिं।
जीवो पमायबहुलो,
समय गोयम! मा पमायए॥*

"प्रमाद-बहुल जीव अपने शुभाशुभ (पूव सचित या वर्तमान सस्कारो (कर्मों) के कारण अनन्त बार भव-चक्र म इधर-उधर घूमा करता है। अत हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद न कर।"

प्रमादवश अनन्तकाल तक जन्म-मरण के आवागमन के पश्चात् यदि जीव मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है—तो भी क्या! करुणासागर प्राणिवत्सल भगवान् अपने दिव्य-शिष्य को सदुपदेश देते हैं—

दुलहे खलु माणुसे भवे,
चिरकालेण वि सव्वपाणिण।
गाढा य विवाग कम्मुणो,
समय गोयम! मा पमायए॥०

दीघकाल के बाद भी प्राणियो को मनुष्य-जन्म मिलना बडा दुलभ है। पूवसचित कुसस्कारो के परिणाम अत्यन्त भयानक होते हैं—अर्थात् दुर्लभ मनुष्य-जन्म को पाकर भी अपने पूवसचित कुसस्कारो से उसको सफल बनाना बडा कठिन है, अत हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

अनन्त पुण्यशाली गणधर गौतम स्वामी को गुण रत्नाकर, त्रैलोक्यपूजित, सर्वज्ञ भगवान् जैसे वीतराग दिव्य सद्गुरु मिले—यह उनके सर्वोत्तम पुण्य का फल था। प्रभु का महान् अनुग्रह देखिये, प्रिय गौतम को अपने समान वैभव सम्पन्न बना दिया।

---

* महावीर वाणी श्री बचरदास दोशी—अप्पमाय सुत्त (२) पृष्ठ १०१
० महावीर वाणी श्री बचरदास दोशी—अप्पमाय सुत्त (२) पृष्ठ १००

इस कलिकाल मे वे मनुष्य धन्य है जिनको पुण्यवत सद्गुरु की शरण मिलती है। सद्गुरु पारसमणि तुल्य है जिनकी कृपा से मनुष्य भव सुधर जाता है। ऐसे पुण्यशाली मनुष्यो मे थे—आचाय विजय ललित सूरिजी महाराज, जिनको बाल्यकाल मे ही मिले—सद्गुरु आचायदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज–अज्ञान तिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु, सचमुच पारसमणि के समान दिव्य, कल्पवृक्ष के समान मनोरथपूरण करने वाले। यह निस्सन्देह ललित का पुण्योदय था।

और वह मङ्गलवेला—जब आचार्यदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज सम्वत् १९५३ मे गुजरावाला (वर्तमान पाकिस्तान मे) पधारे। उस समय लाला बूडामलजी एक छोटे बालक को लेकर गुरुदेव के पास आये। विनयपूवक वन्दना के पश्चात् उन्होंने उस बालक को निर्मल चरण-कमलो मे अर्पित किया। दिव्य कमलो मे श्रीफल के समान शोभित उस बालक को देख कर दर्शक हर्षित हुए। दिव्य दशन से वह बालक आत्म-विभोर हो गया।

पूज्य गुरुदेव ने कर-कमल से उसके सिर को छुआ। उस कोमल स्पर्श से बालक गद्गद् हो गया। वह चरणो में लिपट गया—जैसे अशोक वृक्ष से कल्प बेल। यद्यपि वह मौन था परन्तु अधर हिल रहे थे—मानो वह मौन प्राथना कर रहा हो —

छोटे से फूल को
अपना लो, अपना लो।
देर कही हो न जाय,
डर है कुम्हला न जाय,
धूल मे बिखर न जाय।
छोट से फूल को,
अपना लो, अपना लो॥
जैसे हो, मान रखो,

प्रभुजी मेरी लाज रखो।
छोटे से फूल को,
अपना लो, अपना लो ।।
कि अधखिला गिर न जाय।
रंग, चटक, हो न हो,
गन्ध गमक हो न हो,
सेवा स्वीकार करो,
अवसर है अभी तो–
छोटे से फूल को
अपना लो, अपना लो ।।
आंधी में कि उड न जाय,
धूल में बिखर न जाय
छोटे से फूल को
अपना लो, अपना लो ।।

इस फूल मे न तो सुगन्ध है और न सौंदर्य। यह मेरा सौभाग्य है कि ऐसे दयालु गुरुदेव मुझे मिले हैं—मेरे अनन्त पुण्य तरु मानो आज फले हैं। अहा ! कितना भाग्यशाली हू ?

वह बालक था लक्ष्मण दास। लक्ष्मण अर्थात् भक्ति का प्रतीक। ये ही बाद मे गुरु कृपा से मरुधरोद्धारक, गुरुभक्त आचार्य ललित सूरिजी हुए।
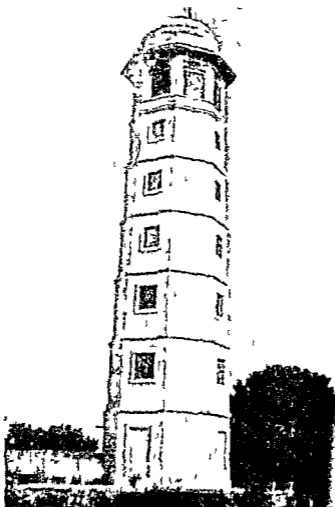
श्री वल्लभ कीर्ति स्तम्भ
फालना

२

कल्पतरु की छाया

[सद्गुरु साक्षात् कल्पवृक्ष है। पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज निस्सन्देह कल्पतरु तुल्य थे जिनकी शीतल छाया तले लक्ष्मण (ललित) के जीवन का विकास हुआ। उस महा महिमावंत गुरुदेव की जीवन झाँकी यहाँ प्रस्तुत है।]

दिवंगत आचार्यदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का जीवन ऐसे संत का जीवन था जिसने जीवन पर्यन्त धर्म एव समाज की सेवा की। उन्होने सर्वप्रथम अपने जीवन को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया। उनका दृढ विश्वास था कि

ज्ञानमेव बुधा प्राहु कर्मणा तपनात्तप ।

(ज्ञान ही वास्तविक तप है, क्योकि यह कर्म को जलाता है।)

गुरुदेव ने पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी (श्रीमद् आत्मारामजी महाराज) के चरण-कमलो मे ज्ञानार्जन किया।* आचार्यदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी गुण-रत्नाकर थे। जो गुण-रत्नाकर की शरण मे रहता है, उसे गुण-रत्न प्राप्त होते ही हैं। उन्होंने रत्नाकर से जो गुण-रत्न प्राप्त किये, उनको विश्व कल्याण

---

* पूज्य आचार्यदेव के गुरु मुनि श्री हर्षविजयजी विद्वान् महत्त्व एव कृपालु थे। वे संवत् १९४६ की चैत्र सुदी १०(ता० २१-३-१८९० ई०) को अपने दिव्य शिष्यरत्न को परम पूज्य आचार्यदेव आत्मारामजी की शरण मे सौंप कर स्वर्ग सिधारे।

हेतु अर्पित कर दिया। शिवमस्तु सर्वजगत —यह उनके जीवन का लक्ष्य बन गया।

कार्तिक शुक्ला द्वितीया (भाई दूज) वि० स० १९२७ के दिन गुजरात प्रात के वडौदा नगर के श्रीमाली परिवार मे सुप्रसिद्ध श्रेष्ठि श्री दीपचन्द भाई के गृह मे पूजनीया माता इच्छावाई की पुनीत कुक्षि से छगनलाल (आचार्य श्री वल्लभ सूरिजी) का जन्म हुआ। पिताश्री धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और माताजी धर्म परायण, सुशील नारी रत्न थी। माता ने मृत्यु के समय अपने लाल को अपने पास बुलाया और अश्रुप्लावित नेत्रो से कहा "प्रिय छगन ! मैं इस नश्वर ससार से विदा हो रही हूँ। तू अमर सुख को प्राप्त करने के लिए प्रयास करना। मैं श्रान्त कृपालु वीतराग देव की शरण मे तुझे छोडकर जा रही हूँ।"

दृश्य अत्यन्त करुण था, परन्तु इन शब्दो का प्रभाव अमिट था। शब्दामृत छगन के अन्तर मे पहुँच चुका था। इससे छोटे से छगन का जीवन-लक्ष्य स्पष्ट हो गया। भाग्य से मिले करुणामूर्ति पूज्य गुरदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराज जिनकी कृपा से छगन आत्म वल्लभ ही नही बने अपितु जन-वल्लभ भी हो गये। पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का सर्वोत्तम गुण था—विनय। विनय वह चुम्बक है जिससे समस्त गुण अपने आप खिचे हुए आते है। विनय की महिमा देखिये

वृक्ष के मूल से सबसे पहले स्कन्ध पैदा होता है। स्कन्ध के बाद शाखाएँ और शाखाओ से दूसरी छोटी-छोटी टहनियाँ निकलती हैं, उनसे पत्ते, बाद मे क्रमश फूल, फल और रस उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है और उस मूल मे

से प्रकट होने वाला उत्तमोत्तम रस मोक्ष है। विनय से ही मनुष्य कीर्ति, विद्या, प्रशसा और कल्याण-मङ्गल शीघ्र प्राप्त करता है।*

विनय गुण के कारण वे आत्म वल्लभ ही नही अपितु विश्व वल्लभ बन गये।

पूज्य गुरुदेव कहा करते थे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार वर्तन करना चाहिए। समाजोत्थान हेतु उन्होने शिक्षा प्रचार पर बल दिया। शिक्षा के दो रूप उनके सामने थे।

१ धार्मिक शिक्षा—जिसे गुरुदेव माता के दूध के समान पोषक मानते थे।

२ व्यावहारिक शिक्षा—जो आर्थिक समृद्धि की आधार-शिला है।

इस लक्ष्य को ध्यान मे रखकर पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा से श्री सघ ने देश भर मे अनेकानेक शिक्षण सस्थाएँ स्थापित की जिनमे उल्लेखनीय है—श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरावाला, श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई, श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलिज फालना, श्री पार्श्वनाथ विद्यालय वरकाणा, आत्मानन्द जैन कॉलिज अम्बाला और देश भर मे फैले हुए अनेक विद्यालय एव पुस्तकालय। गुरुदेव की प्रेरणा से अनेक कन्या-शालाएँ भी खुली। पूज्य गुरुदेव की नि स्पृहता देखिए—श्री सघ के विशेष आग्रह पर भी उन्होने इन सस्थाओ का अपने नाम पर नामकरण नही करने दिया। अनन्त कृपालु भगवान् और अपने गुरुदेव के नाम पर ही इन सस्थाओ की स्थापना की गई। यह उनकी लघुता थी—परन्तु इस लघुता मे विराटता के दर्शन होते हैं। 'लघुता मे प्रभुता वाले इस

---

* एव धम्मस्स विणओ, मूल परमो से मोक्खो।
जेण कित्ति सुय सिग्घ, निस्सेस चाभिगच्छइ।
(दशवैकालिक सूत्र अ० ९, उ० २, गा० २)
'महावीर वाणी'—श्री बेचरदास दोशी
से साभार उद्धृत

विलक्षण गुण के कारण गुरुदेव जन-वल्लभ बन गये। फूल छोटा होता है, परन्तु उसकी सुगन्ध दूर-दूर तक फैल कर सबको आनन्द-मग्न कर देती है, उसी प्रकार सद्गुण सबको प्रभावित करता है। फूल के समान सद्गुण की सुगन्ध फैलाने वाले गुरुदेव का जीवन प्रेरणा स्रोत रहेगा। जहाँ एक ओर फूल की कोमलता गुरुदेव मे थी, वहाँ दूसरी ओर हिमालय के समान दृढता भी थी—वह दृढता समाज की सडी-गली व्यवस्था पर तीखा प्रहार करती थी—ऐसा तीखा प्रहार कि रुढियो के जड बन्धन ढीले पड जाते थे—और शनै शनै टूट जाते थे। नव जागृति के शखनाद मे समाज नव-निर्माण के सुपथ पर अग्रसर हो जाता था। गुरुदेव ने राष्ट्रोत्थान के लिए मानवीय चरित्र पर विशेष बल दिया। दुर्व्यसनो का त्याग आवश्यक है। व्यसनग्रस्त नागरिको से देश मे उद्धार असभव है। समाज का पतन दुर्व्यसनो के कारण ही होता है, इसलिए गुरुदेव ने सदुपदेश दिया

'शत्रु राष्ट्रो की अपेक्षा ये व्यसन रूपी दुश्मन अधिक जबदस्त हैं। जुआ, चोरी, मासाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और शिकार। ये सप्त व्यसन मनुष्य को नरक की खाई मे पटक देते हैं। गुरुदेव के उपदेशो से सभी जाति और धर्म के लोग प्रभावित हुए। अनेक मुसलमानो, सिक्खो तथा मांस-भोजियो ने मास-मदिरा का परित्याग किया। गुरुदेव का व्याख्यान सुनने के लिए सभी जाति और धर्म के लोग आते थे। वाणी-पीयूष अन्तर मे रमने लगता था। जीवन मे सात्विक भाव पुष्प खिल जाते थे। आचार और विचारो की शुद्धि से जीवन मे परिवर्तन आ जाता था। इसे कहते हैं अरुणोदय, जागृतिवेला। अशुभ से शुभ मे जाना ही अरुणोदय है, जागृति की मगलवेला है।'

कोई कहता है, उनकी वाणी मे जादू था और कोई कहता है कि चमत्कार था, परन्तु वास्तविक बात यह है कि उनकी वाणी मे

सच्चाई थी। सच्चाई आडम्बर रहित होती है जिसका प्रभाव हृदय पर अचूक पडता है।

परविज्ञान की नवीनतम खोजो ने पता लगाया है कि महात्माओ के चमत्कार के पीछे क्या रहस्य है ?

प्रत्येक प्राणी मे दिव्य ऊर्जा विद्यमान है। इसे दिव्य शक्ति या अन्तर्शक्ति (आत्म शक्ति) भी कहते हैं। करुणा, प्रेम आदि सद्‌गुणो से यह आत्मशक्ति प्रज्वलित होती है। जैसे राख मे पडे हुए अगारे राख के दूर होने पर पुन जलने लगते है पवन से उन अगारो की अग्नि तेज हो जाती है। ऐसी ही है आत्मशक्ति। क्रोध, लोभादि कपायो की राख मे आत्मज्योति छिपी रहती है। करुणा और प्रेम रूपी पवन से यह राख दूर हो जाती है और आत्म प्रकाश चमकने लगता है। इस तथ्य को रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डेविडोविच किरलियान ने सिद्ध किया है। उसने ऐसे सवेदनशील कैमेरा का आविष्कार किया है जो मानव के अन्तर के चित्र उतारने मे सक्षम है। उसके फोटो यह प्रमाणित करते हैं कि प्रेम, करुणा, क्षमा आदि भावो से भरे हुए मनुष्य के भीतर दिव्य शक्ति के प्रकाश तन्तु अधिक मात्रा मे निकलते है। उसके चारो ओर दिव्य आभामडल चमकता है। यह दिव्य आभा (दिव्य ऊर्जा) प्रेम और करुणा आदि सद्‌भावो की मात्रा के अनुसार न्यूनाधिक रहती है। दिव्य ऊर्जा को उत्पन्न करने वाले आत्मिक गुण हैं– क्षमा, करुणा प्रेम, सतोष आदि सद्‌भाव। जहाँ पर विज्ञानवेत्ता यह मानते हैं, वहाँ शास्त्र भी यह कहते है–

चत्तारि धम्मदारा–
खती, मुत्ती अज्जवे, मद्दवे।

—श्री स्थानाग सूत्र ४ ' ४

क्षमा, सतोष, सरलता और नम्रता–ये चार धर्म के द्वार हैं,

सत्य सत्य ही रहेगा–चाहे विज्ञान कहे, चाहे शास्त्र, क्योकि

पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी अनेक सद्गुणों के भण्डार थे। क्षमा, सतोष, सारल्य एव विनम्रता आदि गुणों से विभूषित थे। यही कारण है उनकी आत्मशक्ति प्रबल थी। वे दिव्य ऊर्जा वाले तेजस्वी सन्त थे। यही रहस्य था कि उनकी निर्मल एव ओजस्वी वाणी जन मन को छू लेती थी। यद्यपि गुरुदेव के मुख पर सौम्यता विराजती थी परन्तु जब वे समाज मे व्याप्त बुराइयो को देखते तब उनका स्वर तीखा हो जाता था। दहेज प्रथा को भयकर रोग बताते हुए गुरुदेव की प्रचण्ड वाणी मानो अगारे बरसा रही हो।

"आज तो वर विक्रय का रोग लगा हुआ है। यह रोग इतना व्यापी है कि समाज इस भयकर टी वी रोग के कारण मृतप्राय बन रहा है। जहाँ देखो वहाँ लडको का नीलाम हो रहा है। लडकी वालो से बडी-बडी रकमे, तिलक-वीटी के रूप मे मागी जाती है, सोना या सोने के जेवर मागे जाते हैं, घडी, रेडियो, सोफासेट, स्कूटर या अन्य फर्नीचर की माग तो मामूली बात है। विदेश जाने और पढाई का खर्च तक मागा जाता है, इस प्रकार पराये और बिना मेहनत के धन पर गुलछर्रे उडाये जाते हैं। युवको के लिए तो यह बेहद शर्म की बात है।"

पीडित एव निर्धन भाई-बहिनो के लिए उनकी पीडा कितनी गहरी थी ?

"आज लक्ष्मी के भण्डार भरपूर हैं परन्तु कहाँ है वह पीडा ? जब दुखियो के प्रति पीडा ही नही है फिर धर्म कहाँ रहा ? मानवता कहाँ रही ? जीवन खोखला बन गया है—मनुष्यता शून्य—केवल ककाल मात्र।

धनवान और गरीब की व्याख्या—भगवान् महावीर ने अहिंसा और त्याग की बहुमूल्य भेंट विश्व को दी है, जिसके पास ये अमूल्य रत्न हैं, वह धनवान है, इन रत्नों से वचित गरीब है।

प्राणी मैत्री—हमारा धर्म समस्त जीवो पर दया करना है। प्राणिमात्र के प्रति प्रेम रखो, यही अमर सुख की सीढी है।

दु ख की जननी—जीभ के स्वाद के लिए मनुष्य जीवो की हत्या करता है। सुनिये, उस आर्त्त नाद को जिसे मूक पशु, पक्षी, जलचर तथा अन्य प्राणी मृत्यु के भय के कारण करते हैं। निस्सन्देह हिंसा दु ख की जननी है।

राष्ट्र गौरव—राष्ट्र का गौरव गगनचुम्वी अट्टालिकाओ एव विशाल भवनो से कदापि नहीं बढता, वह बढता है चरित्रवान् नागरिको से।

चरित्र की महिमा—हीरो की कीमत उनकी चमक के कारण होती है, मनुष्य की कीमत उसके चरित्र के कारण होती है।

आधुनिक शिक्षा—आज आधुनिक शिक्षा से लोग घबराते है और कहते है कि शिक्षा से सस्कृति का नाश होता है, परन्तु मैं तो उसको वैसी ही भ्राति मानता हू जैसे कि बिजली जला देती है, इसलिए बिजली के उपयोग से दूर रहना चाहिए। इस तरह मे यन्त्रवादी घबराये होते तो सारे ससार मे यन्त्रवाद का साम्राज्य स्थापित नही कर पाते। जिस काल मे जिस प्रकार की शिक्षा प्रचलित हो उसको प्राप्त किये बिना हम अपना हित साध नही सकते।

सत्य पथ का पथिक—

मैं न जैन हू, न बौद्ध, न वैष्णव हू, न शैव न हिन्दू और न मुसलमान। मैं तो वीतरागदेव परमात्मा को खोजने के मार्ग पर चलने वाला मानव हू, यात्री हू।

दया की महिमा—प्रभु दया के रूप मे रमते है। जहाँ दया है, रहम है, वहाँ राम, रहीम, कृष्ण, करीम, शिव-शकर, वीतराग-देव निवास करते हैं।

योगिराज आनन्दघनजी महाराज ने अपने एक पद मे यही भाव दर्शाया है

राम कहो रहमान कहो, कोउ कान्ह कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री ।।राम० १

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री।
तैसे खड कल्पनारोपित, आप अखड सरूप री। राम० २

निज पद रमै राम सो कहिए, रहम करै रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहिये, महादेव निरवाण री। राम० ३

परसै रूप पारस सो कहिये ब्रह्म चीन्है सो ब्रह्म री।
इह विध साधो आप 'आनन्दघन' चेतनमय नि कर्म री ।। राम० ४

ऐसी समन्यवादी भावना के कारण पूज्य आचाय देव के चरणो मे सभी सम्प्रदायो और धर्मों के लोग आते थे और अमृत-वाणी का रसपान कर तृप्त होते थे। इस समदृष्टि के कारण वे विश्ववल्लभ हो गये।)

मैं क्या चाहता हू–होवे कि न होवे परन्तु मेरा आत्मा यही चाहता है कि साम्प्रदायिकता दूर होकर जैन समाज मात्र श्री महावीर स्वामी के झण्डे के नीचे एकत्रित होकर श्री महावीर की जय बोले तथा जैन शासन की वृद्धि के लिए ऐसी एक 'जैन विश्व-विद्यालय' नामक सस्था स्थापित होवे जिसमे प्रत्येक जैन शिक्षित हो, धर्म को बाधा न पहुँचे, इस प्रकार राज्याधिकार मे जैनो की वृद्धि होवे। फलस्वरूप सभी जैन शिक्षित होवें और भूख से पीडित न रहें। शासनदेव मेरी इन सब भावनाओ को सफल करे, यही चाहता है।

महाप्रयाण–इस क्रांतिकारी दिव्य सत का जीवन दीप आश्विन् वदी १०, मगलवार, सवत् २०११ को रात्रि मे दा बजकर ३२ मिनट पर बम्बई मे बुझ गया। अग्नि सस्कार आश्विन वदी

२१ को किया गया, अत पूज्य गुरुदेव की जयन्ती एकादशी को मनाई जाती है।

दीप बुझ गया, ऐसा लगा कि जगत् का सूर्य अस्त हो गया हो, परन्तु वह सूय तो अब भी जन-मन मे चमक रहा है। उनके दिव्य उपदेश विविध किरणो के रूप मे समाज में प्रकाशमान हैं—वह प्रकाश समाज के अन्धकार को दूर करता रहेगा। सचमुच गुरुदेव का अज्ञान तिमिर तरणि नाम सार्थक है।

भायखला (बम्बई) मे पूज्य गुरुदेव का भव्य समाधिमन्दिर है। जब बम्बई जाओ, तब कलिकाल कल्पतरु पजाब केसरी की सुन्दर प्रतिमा के दर्शनार्थ अवश्य जाना। उस सौम्य प्रतिमा के दर्शन से मन को अपूव शान्ति मिलती है। ऐसा लगता है कि पूज्य गुरुदेव मौन मधुर वाणी मे कुछ बोल रहे हो। यद्यपि हम उनके मौन शब्दो को सुन नहीं पाते परन्तु हृदय वीणा पर मौन-मधुर स्वर लहरी थिरकने लगती है।

यद्यपि श्री सघ ने पूज्य गुरुदेव को पजाब केसरी, शासन सम्राट्, कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणि आदि अलकरणो और पदवियो मे अलकृत किया परन्तु वे सदा इनके प्रति अनासक्त ही रहे। जनता के प्रेम के कारण ही उन्होने इनको धारण किया। वे कमल के समान निर्मल रहे।

गुरुदेव ने अनेक प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया, उपधानादि अनेक धम के शुभ काय, मन्दिरो की प्रतिष्ठाएँ एव अजनशलाकाएँ सम्पन्न की, उनके कर कमलो से अनेक भव्य जीव दीक्षित हुए। अनेक राजा-महाराजाओ के हीरक व स्वर्णजटित मुकुट उनके चरणो म झुकते थे परन्तु इतना वैभव प्राप्त कर भी जो निरभिमानी एव अनासक्त रहे, जो जन-वल्लभ ही बने रहे और जो गो महावीर

के अहिंसा और प्रेम की अमृतधारा बहाते रहे, ऐसे संत के चरण में कोटिश प्रणाम।

कल्पवृक्ष तुल्य ऐसे दिव्य गुरुदेव की शरण छाया तले लक्ष्मण (ललित) का जीवन क्यों न सार्थक होता ?

३

धरोहर

गुजरावाला–(वर्तमान पश्चिम पाकिस्तान मे) पजाव प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी थी। यहाँ का जैन सघ अत्यन्त उत्साह से धार्मिक कामो मे रस लेता था, फलस्वरूप अनेक शुभ कार्य सम्पन्न होते थे। यहाँ के मन्दिरजी की प्रतिष्ठा वि स १९७० मे हुई थी। इसमे मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की सुन्दर प्रतिमा शोभित थी। दर्शन करते ही आनन्द की अमृतधारा वरसने लगती थी। उस मूर्ति को देखकर योगिराज श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के स्तवन की ये पक्तियाँ अधर-वशी पर गू जने लगती हैं—

'अमिय भरी मूरति रची रे उपमा घटे न कोय।
दृष्टि सुधारस झीलती रे, निरखत तपति न होय।'

मदिर की वनावट कलात्मक थी। सफेद एव काले सगमरमर से वने हुए उस जिनालय की शोभा अद्वितीय थी। मदिर दीपावली के प्रसिद्ध पव पर दीपको तथा विजली के प्रकाश द्वारा सु दर ढग से सजाया जाता था, जिसकी सुन्दरता, छटा व सजावट देखने के लिए नगर निवासी 'अमृतसर के श्री दरवार साहिव' की भाति विशेषरूप से देखने के लिए आकर्षित होते थे। यहाँ के श्री सघ द्वारा कुछ निर्वाचित सदस्यो की एक समिति वनाई हुई थी जिसका नाम श्री जैन श्वेतावर मूर्तिपूजक आरती मण्डल रखा हुआ था। उस आरती मण्डल द्वारा वडे ही भक्तिभाव, श्रद्धा तथा सच्ची लगन से हारमोनियम, तवला, ढोलकी, मृदग आदि वाजिन्त्रो व विविध नृत्य कला के साथ वडे ही स्वर से

'आरती' गाई जाती थी। इस आरती को देखने तथा सुनने के लिए स्थानीय जनता तथा समीपवर्ती ग्रामवासी पर्याप्त सख्या मे आते थे।●

गुजरावाला नगरी के निकट पश्चिम दिशा मे लगभग पाँच मील की दूरी पर भखरियारी नामक छोटा सा गाँव है। उस गाव मे श्रीयुत दौलतरामजी अत्यन्त धर्मश्रद्धालु एव चरित्रनिष्ठ स्वर्णकार के पुत्ररत्न के रूप मे लक्ष्मणदास का जन्म सवत् १९३७ कार्तिक शुक्ला १ को हुआ। श्री दौलतरामजी प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनके पूर्वज महाराजा रणजीतसिंहजी के समय अच्छे-खासे जमीदार थे। यह खानदान राजसम्मानित एव वैभव सम्पन्न था। कालान्तर में जमीदारी समाप्त हो गई और परिवार ने अपने पुरातन व्यवसाय 'स्वर्ण उद्योग' को सम्भाला। स्वर्णकार वैश्य जाति का एक विशिष्ट गुण होता है—सूक्ष्मबुद्धि। सूक्ष्मबुद्धि का लक्षण है—किसी वस्तु को बारीकी से परख करना। जिसमे सूक्ष्मबुद्धि नही होती, वह बाहरी चकाचौंध के कारण भुलावे में आ जाता है सूक्ष्मबुद्धि अन्त-प्रवेश करती है—एक्स किरण की तरह, अत वह मायावी लोगो के चक्कर मे नही फसने देती। लाला दौलतरामजी को सुनार की सूक्ष्म बुद्धि मिली थी, अत उनकी परख बारीक थी। यही कारण है उनके स्नेहीजनो मे उत्तम श्रेणी के सज्जन रहते थे। जीवनयात्रा मे पग पग बारीक-बुद्धि की आवश्यकता है क्योंकि इसके अभाव मे कुचक्री एव मायावी लोग साथी-सगी हो जाते है और जिनकी सगति से जीवन अनेकानेक दुर्गुणो का घर बन जाता है। लाला दौलतराम का यह जन्मजात विलक्षण गुण था कि वे दुष्ट और सज्जन प्रकृति वालों की जाँच अपने सूक्ष्म बुद्धिबल से कर लेते थे। लालाजी के यद्यपि अनेक

● वल्लभ सन्देश वर्ष ८, अक ३, लेखक ज्ञानचन्द जैन—मालेरकोटला द्वारा लिखित 'पाकिस्तान में रह गये—जैनमन्दिर एवं सस्थाए' लेख

अच्छे मित्र थे, परन्तु उन मित्रो मे सर्वाधिक स्नेही जन थे–भगत बुढामल । लाला बुढामल ओसवाल जैन जाति के श्रावक थे। वे वाल ब्रह्मचारी थे । लाला दौलतराम वैष्णव थे । दोना की परम मैत्री भखरियारी ग्राम मे प्रसिद्ध थी। भगत बुढामल लाला-दौलतराम के सुचरित्र से प्रभावित थे। लोगो मे लालाजी की ईमानदारी की छाप पड गई थी। इनके पिताश्री भी ऐसे ही चरित्रवान एव ईमानदार व्यक्ति के रूप मे लोकप्रिय थे । लाला दौलतराम और भगत बुढामल का प्रेम देखकर लोग 'राम लक्ष्मण' की जोडी कहते थे । लक्ष्मणदास के रूप मे पुनरत्न की प्राप्ति होने पर घर मे सुख समृद्धि बढने लगी । परन्तु सब दिन जात न एक समाना। दौलतरामजी अचानक बीमार हो गये। अपनी अंतिम घडी निकट जानकर लाला दौलतरामजी ने अपने अभिन्न मित्र भगत बुढामल को अपने पास बुलाया और अश्रुपूरित नेत्रो से उनको कहा "भगत ! मैं विदा हो रहा हूँ। यह धरोहर-मेरा इकलौता पुत्र–सभालना । तुम जानते हो–मातृ-सुख से यह शैशवकाल से ही वचित रहा और अब पिता की छाया भी उठ रही है । यह तुम्हारा ही पुत्र है—इसका मानव-जन्म सफल हो जाय, ऐसा करना ।"

इस मार्मिक वाणी से लाला बुढामल द्रवित हुए। उनकी आँखो से अश्रुमोती गिरने लगे। उधर लाला दौलतराम की अश्रु-गगा भी प्रवाहित थी । गगा-जमुना की ये धाराएँ एक दूसरे मे मिल रही थी—समीप छोटा लक्ष्मण भी रो रहा था। मानो सरस्वती की लुप्तधारा भी प्रकट हो गई हो और इसमे त्रिवेणी सगम बन गया। त्रिवेणी सगम–तीर्थराज प्रयाग। इस तीर्थ मे नहाने का सौभाग्य मुझे आज मिला है । निमल होकर मेरी लेखनी अब उज्ज्वल ललित चरित्र को लिखेगी क्योकि किसी भी लेखक या कवि को वेदना की आवश्यकता होती है—वेदना नैवेद्य है । विद्यादेवी के

चरण कमलो मे भाव-नैवेद्य चढाकर रचना की प्रेरणा पाऊँगा। आदि कवि वाल्मीकि ने इस नैवेद्य को प्राप्त किया था—व्याध द्वारा घायल आर्त्तनाद करते हुए क्रौंच पक्षी की वेदना से

> त शोणितपरीताङ्ग चेष्टमान महीतले।
> भार्या तु निहित दृष्ट्वा रुराव करुणा गिरम्।
>
> (—वाल्मीकीय रामायण)

और मुझे यह नैवेद्य प्राप्त हुआ लाला दौलतराम की विदाई वेला मे।

लाला दौलतरामजी के प्राण पखेरू उड गये। भगत बुढामल ने अपनी धरोहर (लक्ष्मणदास) को गोद मे उठा लिया। दृश्य अत्यन्त मार्मिक था। ऐसा प्रतीत होता था मानो वात्सल्य भाव स्वय प्रकट हो गया हो।

इस प्रकार बालक लक्ष्मणदास मातापिता के साये से वचित होकर भी अनाथ नही बना।

वह कीमती धरोहर भगतजी के पास सुरक्षित थी।

४

मङ्गलवेला

भगत बुढामल नियमधारी श्रावक थे। वे अपने मित्र स्व० दौलतराम की धरोहर बालक लक्ष्मणदास का लालन-पालन स्नेह-पूर्वक करने लगे। भगतजी की जिनेन्द्रभक्ति प्रशसनीय थी। वे प्रतिक्रमण, पूजा, सामायिक आदि शुभक्रियाओ को अत्यन्त ही उल्लासपूर्वक करते थे। बालक लक्ष्मणदास भी इन धार्मिक क्रियाओ मे रस लेने लगे। व्यावहारिक शिक्षा भी साथ-साथ चलती थी। लक्ष्मणदास की प्रखर बुद्धि सर्वत्र झलकने लगी। स्मरण शक्ति अद्वितीय थी। एक मेधावी बालक के सम्पूर्ण लक्षण बालक लक्ष्मणदास मे प्रतिभासित होने लगे। भगतजी अपने उत्तर-दायित्व को समझते थे, परन्तु कभी-कभी वे दुविधा मे झूलते थे। वे विचार करते कि बालक को पढा-लिखाकर क्यो न व्यापार मे डाल दिया जाय ? स्वर्गीय दौलतराम का कुलदीपक उनके नाम को उजागर करेगा। दौलत के घर मे दान-दक्षिणा, अतिथि सत्कार, साधु-सतो की सेवा की गगा नित बहती रही है, पुत्र भी अपने पिता के क़दमो पर चलेगा तो मेरे मित्र की दिवगत आत्मा को सतोष मिलेगा। लक्ष्मी का भी सदुपयोग हो जायगा, परन्तु वे बालक की विलक्षण प्रतिभा एव सुसस्कार सम्पनता देखकर उस विचार को छोड देते। बार-बार अपने मित्र दौलत के अन्तिम शब्द उनके अ तर्मन मे गूँजते—भगत ! मैं विदा हो रहा हू। यह धरोहर

सम्भालना । तुम्हारा ही पुत्र है, इसका मानव-जन्म सफल हो जाय ऐसा करना ।

'मानव-जन्म सफल हो जाय'—भगतजी के अन्तमन म ये शब्द गूजते । उनके मानस मे भाव-दीप प्रज्वलित हो जाते और उस अन्तप्रकाश मे मित्र दौलतराम का चित्र दिखाई देता ।

सवत् १६५३ की बात है । पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय वल्लभसूरीश्वरजी महाराज पजाब के अनेक ग्राम व नगरो म पैदल विहार करते हुए गुजरावाला पधारे । आसपास के गावो मे हलचल मच गई । सभी जाति एव धम के मनुष्य उस महान् सत का नाम सुन चुके थे । भगत बुढामल गुरुदेव के शुभागमन से अत्यन्त आनदित हुए । वे लक्ष्मण को साथ लेकर गुरुदेव के दशनार्थ गुजरा-वाला पहुँचे । उस समय उपाश्रय में व्याख्यान चल रहा था । गुरुदेव की अमृतवाणी का प्रभाव अद्‌भुत था । श्रोतागण मत्रमुग्ध थे । ससार की असारता, मानव जीवन की सफलता एव चरित्रबल पर गुरुदेव के विचार मननीय थे । गुरुदेव ने धम और अधम पर व्याख्यान दिया । उन्होने कहा

ससार मे अज्ञानी, अविवेकी जीवो का बार-बार अकाम मरण हुआ करता है और पडित पुरुषो का सकाम मरण एक बार ही होता है । उनका पुनर्जन्म नही होता अर्थात् विवेकी पडित पुरुष बार-बार मृत्यु नही पाते ।•

• बालाण अकाम तु,
मरण असइ भव ।
पडियाण सकाम तु,
उक्कोसेण सइ भवे ।—उत्तराध्ययन सूत्र अ० ५ गा० ३

अज्ञानी मनुष्य की मूर्खता तो देखो कि वह धर्म को छोड अधर्म स्वीकार कर अधार्मिक हो रहा है और अन्त मे नरक गति को प्राप्त होता है।●

आचरण द्वारा सत्यधम का अनुसरण करने वाले धीर पुरुषो की धीरता तो देखो कि वे अधर्म को त्यागकर धार्मिक बन जाते हैं।०

परम पूज्य गुरुदेव का उपदेशामृत पीकर भगतजी को अपने मित्र दौलत के अतिम शब्द स्मरण हो आये– 'लक्ष्मण का मनुष्य जन्म सफल हो जाय ऐसा करना।' उन शब्दो की विद्युत् रेखाओ मे उन्होने अपने स्वर्गीय मित्र दौलतराम का चित्र भी देखा। वे क्षण भर अतर्धारा मे खो गये। एक ओर लक्ष्मण के प्रति उनका वात्सल्य भाव था तो दूसरी ओर अपने मित्र के अतिम शब्द थे जिनका स्पष्ट मन्तव्य था कि लक्ष्मण ससार मे फसने योग्य नही है, वह तो ऐसे सतपुरुषो के चरण-कमलो मे रहने योग्य है। दो तीन दिन उपदेशामृत पीकर लक्ष्मण के मन मे भी हलचल मच गई। अमृत का प्रभाव अचूक था। लक्ष्मण खोया खोया रहने लगा। भगतजी ने अपने लाडले को पूछा लक्ष्मण क्या बात है, तू कुछ उदास क्या है ?

● बालस्स पस्स बालत्त
 अहम्म पडिवज्जिया।
 चिच्चा धम्म अहम्मिट्ठे,
 नरए उववज्जई॥

० धीरस्स पस्स धीरत,
 सच्चाधम्माणुवत्तिणो।
 चिच्चा अधम्म धमिट्ठे
 देवेसु उववज्जइ।

'बापू! कुछ नहीं, यो ही विचार कर रहा हू । गुरुदेव के व्याख्यान अत्यन्त उत्तम हैं, एक-एक शब्द मन मे रम रहा है। अहा! यह अमृत पान !

"तुझे पूज्य गुरुदेव अच्छे लगते हैं न ?' भगतजी ने हर्षित होकर पूछा ।

क्यो नही, पिताजी । वे जो बातें कहते है, अत्यन्त प्यारी हैं। मेरी इच्छा तो यही है कि गुरुदेव के पास सदा सर्वदा रहू ।

भगतजी ने लक्ष्मण को गले लगाया । उन्हाने कहा तेरे पिता ने अतिम वेला मे मुझे कहा था—लक्ष्मण का मनुष्य जीवन सफल हो जाय, ऐसा करना। किन्तु मेरे मन मे तुम्हारे प्रति वात्सल्य है, इस कारण मैं तुझे छोडना नही चाहता था,पर । यह कहते-कहते भगतजी की आँखो मे हर्ष के आँसू छलकने लगे। लक्ष्मण ने जब अश्रुपूरित भगतजी को देखा तो उसकी आँखें भी गीली हो गई परन्तु दूसरे ही क्षण उन्होने लक्ष्मण को कहा अब शुभ घडी आ गई है—लक्ष्मण ! तू पूज्य गुरुदेव के पास रहना। तेरा मनुष्य जन्म सफल हो जायगा, ऐसे कृपालु महात्मा के चरणो मे तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।

यह कहते-कहते भगतजी ने अपने लाडले को गले लगाया और फिर स्नेहसिक्त वाणी मे पूछा सचमुच तुम्हारी यही इच्छा है, लक्ष्मण ?

'पिताजी ! गुरुदेव कितने अच्छे हैं ? उनकी वाणी मे जादू है, मेरे मन मे उनकी मोहिनी मूर्ति बस गई है—अभिलाषा यही है कि उनके चरणो मे शीघ्र पहुँच जाऊँ।'

इस उत्तर से भगतजी गद्‌गद् हो गये। उनके मुख मण्डल पर तेज चमकने लगा। वे सोचने लगे कि मित्र की इस धरोहर को

पूज्य गुरुदेव को सौंपने की मगला वेला आ गई है। इतना कहते ही वे अपनी मस्ती मे गुनगुनाने लगे

मुसाफिर रैन रही अब थोरी,
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।
जाग-जाग तु निंद त्याग दे,
होत वस्तु की चोरी।
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।१।
मजिल दूर भयो भवसागर,
मान कूर मति मोरी।
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।२।
चिदानद चेतनमय मूरत,
देखे हृदय दृग जोरी।
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।३।

भगतजी अपनी मस्ती से इस प्रकार यदा-कदा गाते ही रहते थे। लक्ष्मण को बहुत से गीत याद हो गये थे, वह भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर गाते-गाते झूमने लगा।

'मुसाफिर रैन रही अब थोरी' गीत यद्यपि भगतजी के मुखारविंद से यकायक मुखरित हुआ था परन्तु वह सार्थक था। रात्रि समाप्त होने वाली है, प्रभात होने वाला है। मोहरात्रि के बीत जाने पर आत्म जागृति का भोर। अहा! वह मधुमय प्रभात! जीवन का अरुणोदय।

लक्ष्मण का मन-मयूर नाच उठा।

'बापू' कुछ नही, यो ही विचार कर रहा हू । गुरुदेव के व्याख्यान अत्यन्त उत्तम हैं, एक-एक शब्द मन मे रम रहा है। अहा' यह अमृत पान !

"तुझे पूज्य गुरुदेव अच्छे लगते हैं न ?' भगतजी ने हर्षित होकर पूछा ।

क्यो नही, पिताजी । वे जो बातें कहते है, अत्यन्त प्यारी हैं । मेरी इच्छा तो यही है कि गुरुदेव के पास सदा सर्वदा रहू ।

भगतजी ने लक्ष्मण को गले लगाया । उन्होंने कहा तेरे पिता ने अन्तिम वेला मे मुझे कहा था—लक्ष्मण का मनुष्य जीवन सफल हो जाय, ऐसा करना । किन्तु मेरे मन मे तुम्हारे प्रति वात्सल्य है, इस कारण मै तुझे छोडना नही चाहता था,पर । यह कहते-कहते भगतजी की आँखो मे हर्ष के आँसू छलकने लगे । लक्ष्मण ने जब अश्रुपूरित भगतजी को देखा तो उसकी आँखें भी गीली हो गई परन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने लक्ष्मण को कहा अब शुभ घडी आ गई है—लक्ष्मण ! तू पूज्य गुरुदेव के पास रहना । तेरा मनुष्य जन्म सफल हो जायगा, ऐसे कृपालु महात्मा के चरणो में तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा ।

यह कहते-कहते भगतजी ने अपने लाडले को गले लगाया और फिर स्नेहसिक्त वाणी मे पूछा सचमुच तुम्हारी यही इच्छा है, लक्ष्मण ?

'पिताजी ! गुरुदेव कितने अच्छे हैं ? उनकी वाणी में जादू है, मेरे मन मे उनकी मोहिनी मूर्ति बस गई है—अभिलाषा यही है कि उनके चरणो मे शीघ्र पहुँच जाऊँ ।'

इस उत्तर से भगतजी गद्‌गद हो गये । उनके मुख मण्डल पर तेज चमकने लगा । वे सोचने लगे कि मित्र की इस धरोहर को

पूज्य गुरुदेव को सौंपने की मगला वेला आ गई है। इतना कहते ही वे अपनी मस्ती मे गुनगुनाने लगे

मुसाफिर रैन रही अब थोरी,
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।
जाग-जाग तु निंद त्याग दे,
होत वस्तु की चोरी।
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।१।
मजिल दूर भयों भवसागर,
मान क्रूर मति मोरी।
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।२।
चिदानद चेतनमय मूरत,
देखे हृदय दृग जोरी।
मुसाफिर रैन रही अब थोरी।३।

भगतजी अपनी मस्ती से इस प्रकार यदा-कदा गाते ही रहते थे। लक्ष्मण को बहुत से गीत याद हो गये थे, वह भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर गाते-गाते झूमने लगा।

'मुसाफिर रैन रही अब थोरी' गीत यद्यपि भगतजी के मुखारविंद से यकायक मुखरित हुआ था परन्तु वह सार्थक था। रात्रि समाप्त होने वाली है, प्रभात होने वाला है। मोहरात्रि के बीत जाने पर आत्म जागृति का भोर। अहा! वह मधुमय प्रभात! जीवन का अरुणोदय।

लक्ष्मण का मन-मयूर नाच उठा।

५

आशा-दीप

संवत् १९५३। वसन्तऋतु। प्रभात की शुभ्र वेला। मन्द-मन्द पवन सुगन्ध बिखेर रहा था। सूर्य की सुनहरी किरणें जगमगा रही थी, उस समय भगत बुढामल भखरियागी ग्राम से गुजरावाला उपाश्रय मे पूज्य गुरुदेव के समीप आए। उनके साथ उनका पालित पुत्र प्रिय लक्ष्मणदास भी था। दोनो ने विनयपूर्वक गुरुदेव को वन्दन किया। फिर भगतजी अत्यन्त भक्ति भाव से पूज्य गुरु से बोले 'पूज्य गुरुदेव! मेरे मित्र स्वर्गीय दौलतराम की धरोहर—उनका एक मात्र पुत्र—आपके चरणो मे छोड रहा हू, आप इसे सभालना। आपकी पावन शरण मे इसका मनुष्य-जन्म सफल हो जायगा।'

यह कहते-कहते वे गुरुदेव के चरणो मे नतमस्तक हुए। पूज्य गुरुदेव ने लक्ष्मण को पुचकारा। कोमल कर-स्पर्श से उसे उठाया। लक्ष्मणदास चरणो मे फूल के समान समर्पण भाव से बैठ गया। भगत बुढामल ने अपने मित्र दौलतराम का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बालक की बुद्धि की प्रशसा की तथा उसके सदाचार के सम्बन्ध मे बताया। पूज्य गुरुदेव ने पीयूषवर्षिणी मधुर वाणी मे कहा

'भगतजी! इसे पढालिखा कर व्यापारी बनाओ। यह बालक आपका एक मात्र सहारा है। बुढापे की लकडी है। यह तुम्हारी सेवा करेगा।'

भगतजी ने असहमति प्रकट करते हुए गुरुदेव से विनती की 'यह विलक्षण गुणवत बालक भव-पक मे नही फँसेगा। मेरे मित्र

की अंतिम इच्छा को पूर्ण करने की अब शुभ घडी आ गई है। यह पुष्प तो आपके चरणो मे ही सुशोभित होगा। इसकी भी यही इच्छा है। कृपालु, कृपा करो और इसका उद्धार करो।

इस विनती मे प्रेम भरा आग्रह था जिससे पूज्य गुरुदेव अत्यन्त प्रभावित हुए। लक्ष्मण के मन मे गुरुदेव की अमिय मूर्ति बस गई थी। वह दिव्य चरणों मे श्रद्धावनत हुआ। चकोर को अपने चन्द्र के दर्शन हो गये। मोर नें अपनें श्यामल मेघ के दर्शन कर लिये। लक्ष्मण का रोम–रोम आनन्द से नाचने लगा।

पूज्य गुरुदेव पारखी थे। कुशल जौहरी की तरह उन्होने इस अमूल्य हीरे को परख लिया। प्रसन्नमुद्रा मे उन्होने भगतजी से कहा 'आपका लक्ष्मण मेरे अन्तर का लक्ष्मण बनेगा। मैं इसकी आँखो मे श्रद्धाभक्ति का नवरग देख रहा हू। इसके ललाट की भाग्य–रेखाएँ यह बता रही हैं कि यह प्रतिभा–सम्पन्न पुण्यात्मा है। यह मेरी आशा का दीपक बनेगा। इसके हाथो महामगलकारी शुभ काय सम्पन्न होगे यह शासन–प्रभावक होगा।

फिर पूज्य गुरुदेव के मृदुल कर ने ज्योही लक्ष्मण के सिर को छुआ–उस स्नेह स्पर्श से लक्ष्मण मानो कमल के समान खिल गया। अग–अग से आनन्द का पराग झरने लगा। लक्ष्मण ने धीमे स्वर में कहा अहा! यह पुण्य वेला। मैं कितना भाग्यशाली हू।

पूज्य गुरुदेव के मुखारविंद से अपने पालित पुत्र के मगल भविष्य के लिए आशीर्वचन सुनकर भगतजी को अत्यन्त शान्ति मिली। उन्होने पावन चरण-कमलो मे प्रणाम किया। हर्ष के अश्रुजल से श्री चरणो का अभिषेक किया। फिर भगतजी की आनन्दवाणी मुखरित हुई 'दीनदयालु! आज मैं मित्र-ऋण से मुक्त हुआ। मेरे उद्धारक! आप अनन्त उपकारी हैं।'

पूज्य श्री ने अत्यन्त शान्त भाव से भगतजी की सराहना की, फिर वे सौम्य स्वर मे बोले 'भगतजी तुम महान् हो। तुम्हारे जैसे सज्जन मनुष्य निस्सन्देह धन्य हैं जो अपने स्वार्थ को छोडकर परमार्थ का ध्यान रखते हैं। तुम चाहते तो मोहवश इसे अपने पास रखते, परन्तु तुम महामानव हो। तुम सचमुच भगत हो।'

लक्ष्मणदास के हर्ष की सीमा न रही। उसको ऐसा अनुभव हुआ मानो उसे विश्व की समस्त सम्पदा मिल गई हो।

गुरुवन्दन करके भगतजी विदा हुए। थोडी देर के पश्चात् समीप के जिन मदिर से एक मधुर स्वरलहरी गू ज उठी

जिन तेरे चरन की शरन ग्रहु।
हृदय कमल मे ध्यान धरत हु, शिर तुज आण वहु,
जिन तेरे चरन की शरन ग्रहु।१।
तुज सम खोल्यो देव खलक मे, पेख्यो नाहि कबहु,
तेरे गुन की जपु जपमाला, अह निशि पाप दहु।
जिन तेरे चरन की शरन ग्रहु।२।
मेरे मन की तुम सब जानो, क्या मुख बहोत कहु?
कहे जस विजय करो त्यु साहिब, ज्यु भव दु ख न लहु।
जिन तेरे चरन की शरन ग्रहु।३।

यह लक्ष्मणदास का मधुर स्वर था। आनदवेला मे वह प्रभुजी के सामने निराली मस्ती मे स्तवनगीत गा रहा था।

पुज्य गुरुदेव को जब ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण का कठ इतना मधुर है तब उनकी प्रीति और भी बढ गई।

६

परीक्षा

पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य मे लक्ष्मणदास के गुण विकसित होने लगे। गुरुदेव के व्यारयान उसके अ तर मे अमीरस घोलते। वह एकान्त मे जब ध्यानलीन होता, तब वे उपदेश वाक्य उसके स्मृति पट पर अकित हो जाते। अहा परमपूज्य गुरुदेव ने अपने प्रवचन मे कितनी सुन्दर एव सारगर्भित बात कही है,

चार तरह के घडे होते हैं

मधु का घडा, मधु का ढक्कन।
मधु का घडा, विष का ढक्कन।
विष का घडा, मधु का ढक्कन।
विष का घडा, विष का ढक्कन।।

जिसका अन्तर, हृदय निष्पाप है, साथ ही वाणी भी मधुर है, वह मनुष्य मधु के घडे पर मधु के समान है।•

पूज्य गुरुदेव के वचनामृत का अर्थ गम्भीर और सुन्दरतम है। वह सोचता मनुष्य घडा है और उसका वचन है टक्कन। इससे चार प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्यो का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इन उपदेशों का सार यह है—मनुष्य को मन और वाणी से मिष्ट-भाषी एव सत्यनिष्ठ होना चाहिये।

'वाचालता सत्य वचन को नष्ट करती है।'••

• श्री स्थानांग सूत्र -४।४

•• मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू।

श्री स्थानांग सूत्र -६।३

अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण करूँगा। सेवा का सेवा मधुरतम है। अमृत से भी अधिक मीठा।

इस प्रकार गुरुदेव के प्रवचन लक्ष्मण के अन्तर्मन मे रमने लगे। इनसे उसे स्फूर्ति मिलती। उसे ऐसा प्रतीत होता कि वह ऐसी दुनिया मे पहुँच रहा है जहाँ शाश्वत आनन्द है। वह मन ही मन कहता पुण्य प्रताप से मुझे सद्गुरु मिले हैं। पूज्य गुरुदेव की महा कल्याणकारिणी शरण पाकर मैं धन्य-धन्य हो गया हू। आनन्द की अतिशयता मे उसकी अधरवशी बज उठी।

तेरी शरण मे आय के, फिर आस किसकी कीजिए।
नही देख पडता है मुझे, दुनिया मे तेरी शान का।
गङ्गा किनारे बैठ के किम कूप का जल पीजिये।
हरगिज नही लायक हूँ मैं, गरचे तेरे दरबार का।
मेरी खता को माफ कर, दीदार अपना दीजिए।
पतित पावन नाम सुनके, मैं शरण तेरी पडा।
सफल कर इस नाम को अपना मुझे कर लीजिए।
मिलत पूर्णानन्द जिसके नाम लेने से सही।
ऐसे गुरु को छोडकर, फिर कौन से हित कीजिए।

अहा मेरे गुरुदेव! मेरे कल्पतरु! इस शीतल छाया मे नित निवास करूँ। इस प्रकार लक्ष्मण के मन मे गुरुदेव के प्रति प्रेम-भक्ति दिनो दिन बढने लगी।

लक्ष्मण गुरुदेव के पास रहकर विनय भाव से सीखने लगा। गुरुदेव महा विद्वत एव बहु प्रतिभा सम्पन्न दिव्य सत थे। वे जितने विराट् और विशाल थे उतने ही लघु भी। महानता का हिमालय, लघुता का रजकण। इन परस्पर विरोधी दिखने वाले गुणो से विभूषित गुरुदेव का अनुपम, विलक्षण जीवन था। विद्वत्ता, उदारता, सयम आदि मे हिमालय की विराटता के दर्शन होते थे।

हिमालय पर हिम जमा रहता है, अत वह शीतल है। पूज्य गुरुदेव की हिमवत शीतल सौम्यता प्राणिमात्र को शान्ति प्रदान करती थी। नम्रता और सरलता मे उनकी लघुता झलकती थी। इन सुगुण-रत्नो से आकर्षित होकर समीपवर्ती एव दूर-दूर से दर्शनार्थी उनके पास नित्य प्रतिदिन आते थे। दर्शनार्थियो मे सभी श्रेणी के लोग होते–जिनमे विद्वान्, समाज सुधारक, तपी-जपी, सयमधारी, सद्‌गृहस्थ आदि। पूज्यश्री सबको सुमार्ग वताते। वे समाज, राष्ट्र एव प्राणिमात्र के लिए हितकारी सत्कर्मो की प्रेरणा देते। भिन्न-भिन्न शुभ कायकलापो मे लगे हुए लोग गुरुदेव का मङ्गल आशीर्वाद पाकर प्रोत्साहित होते। वे मनुष्य जीवन को सफल बनाने की कुजी बता देते। 'वह कुजी सवके लिए सुलभ है। प्राणिमात्र के तारक, त्रैलोक्यपूजित दीनदयालु भगवान् की कृपा से वह कुजी सवको सहज ही प्राप्त है।' पूज्य गुरुदेव कहते।

जीवंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाण वा, न हणे नो वि घायए॥

—दशवैकालिक अ ६ गा ९

ससार मे जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी है, उन सवको, जानते हुए और अनजान मे, न स्वय मारना चाहिए और न दूसरो से मरवाना चाहिए। अहिंसा सुख की कुजी है। प्राणिमात्र के प्रति प्रेमभाव रखो।

[महाभारत मे उल्लेख है ऋजु प्रणिहितो गच्छन् त्रस-स्थावरवर्जक'–शान्तिपर्व अध्याय ६, श्लोक १६।

सूक्ष्म चीटी से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणी त्रस हैं।

स्थावर जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं—१ वृक्ष, वेल, छोटे-छोटे पौधे, हरी घास आदि। इन्हें वनस्पति कहते हैं। २ पृथ्वी, ३ पानी, ४ अग्नि ५ वायु।]

पूज्य गुरुदेव के ऐसे वार्तालापो एव शास्त्रोक्त प्रवचनो को सुनने का शुभ अवसर लक्ष्मणदास को प्रतिदिन मिलता। लक्ष्मण-

दास की आयु छोटी थी। वह था केवल सोलह वर्षीय किशोर, पर वह उन समस्त गतिविधियो पर नजर रखता। वह प्राय मौन रहता किन्तु जैसे रवि-किरणों से पुष्पकली खिलकर सुगन्ध बिखेरती है, उसी प्रकार गुरुदेव की शरण मे उसकी जीवन कली खिलने लगी। फूल मे सुगन्ध और सौन्दर्य प्रदान करने वाले सूर्यदेव ही है। लक्ष्मण के जीवन पुष्प में गुण-सौरभ और भाव लालित्य भरने वाले दिनकर ये पूज्य गुरुदेव। फिर उसकी जीवन लाली क्यो न खिलती ?

पूज्य गुरुदेव ने सवत् १६५३ का चातुर्मास गुजरावाला मे किया। पर्वाधिराज पर्युषण मे श्री कल्प सूत्र का वाचन हुआ। पूज्य श्री के मुखारविंद से भगवान् महावीर के पुण्य चरित्र को सुनकर श्रोतागण आत्मनिभोर हो गये।

एक दिन गुरुदेव भगवान् के दीक्षा कल्याणक पर प्रवचन दे रहे थे। इसके पहले कृपालु प्रभु के च्यवन तथा जन्म कल्याणक का रसपूर्ण वर्णन सुन कर, भक्त जन हर्ष-विभोर हो चुके थे। मेरु शिखर पर जन्मोत्सव का वर्णन इतना सजीव एवं आह्लादकारी था कि श्रोतागण आनन्द मे झूमने लगे थे। दीक्षा कल्याणक भी इतना ही सरस था। भगवान् चन्द्रप्रभा नामक पालकी मे विराजमान हुए। इन्द्रादि देवता अतिशय भक्ति करने लगे। राज परिवार एव अपार जनसमूह शोभा यात्रा मे सम्मिलित हुए। पुष्पवृष्टि होने लगी। विविध वाजित्र बजने लगे। समस्त क्षत्रिय कुण्ड नगरी सजाई गई थी। हर्ष का समुद्र उमडने लगा। जय-जयकार के मगल-घोष से आकाश गूंजने लगा। पालकी ज्ञातखण्ड नामक उद्यान में प्रविष्ट हुई। अशोकवृक्ष के नीचे प्रभु उतरे। स्वर्ण एवं रत्नजटित आभूषण उतारे। राजसी वेशभूषा त्याग दी तथा अपनी मुष्टि से केश-लोचन किया। प्रभु अशोक वृक्ष के नीचे अत्यन्त शोभायमान थे।

मुख पर प्रभामडल दमक रहा था—जैसे साक्षात् इन्द्र देवलोक से भूमि पर उतर आया हो। शरीर पर केवल देव दूष्य वस्त्र शोभित था। ऐसा प्रतीत होता था कि निर्मल आकाश मे इन्द्रधनुप प्रकट हो गया हो।

गुरुदेव के मुखारविंद से भगवान के दीक्षा कल्याणक महोत्सव का वर्णन सुनकर लक्ष्मण के नेत्रो मे हर्ष के अश्रुमुक्ता छलकने लगे। वह क्षण भर अपने आपको भूल गया। अन्तर मे प्रभु की मनमोहिनी छवि अकित हो गई। वह ध्यानमग्न हो गया। जब उसकी आँखें खुली, तब उसके सामने पूज्य गुरुदेव विराजमान थे। उसने मन मे कहा 'अहा! यह सौम्य मूर्ति। चन्द्र सी शीतलता। ऐसे परमोपकारी गुरुदेव उचित अवसर पर मुझे भी दीक्षा देगे। मैं भी वीतराग प्रभु के दिव्य पथ का पथिक बनूँगा।

चातक जैसे स्वाति नक्षत्र के मेघजल की बाट जोहता है, उसी प्रकार लक्ष्मण दीक्षा की मगल वेला की प्रतीक्षा करने लगा। ज्यो-ज्यो दिन बीतने लगे, लक्ष्मण को आतुरता बढ़ने लगी। वैराग्य-लता पुष्पित हो गई थी। यद्यपि वह गुरुदेव की छत्र-छाया मे रात-दिन रहता था परन्तु उसकी दशा उस परीक्षार्थी के समान थी जिसने परीक्षा तो दे दी थी पर परिणाम घोपित नही हुआ था। उत्तम श्रेणी का परीक्षार्थी भी परिणाम की इन्तजार में व्याकुल रहता है। यद्यपि उसे ज्ञात है कि परिणाम सर्वोत्तम होगा, फिर भी जब तक घोपणा नही होती तब तक एक उत्सुकता बनी रहती है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। लक्ष्मण की उत्कठा भी बढ़ने लगी।

पूज्य गुरुदेव लक्ष्मण की मनोदशा को समझ गये। वे इस हीरे की पूरी जाच कर चुके थे। हीरा उज्ज्वल था, उसमे नैसर्गिक चमक थी जिसे अन्तर्दीप्ति कहते हैं। अत वे अपने लक्ष्मण को शीघ्र दीक्षित करना चाहते थे। अनुकूल ऋतु आने पर ही तरु फलते-फूलते हैं। वसतागमन अब समीप था।

❊

७

मुक्ताहार

गुजरावाला का चातुर्मास अत्यन्त धूमधाम से समाप्त हुआ। पूज्य गुरुदेव ने जम्मू होते हुए सनखतरा की ओर विहार किया। रास्ते मे विशनाह नामक ग्राम मे रात्रि भर विश्राम किया। आप जिस धर्मशाला मे ठहरे थे वहाँ एक कथाभट्ट रात्रि मे कथा वाचते थे। जब उनको मालूम हुआ कि कोई साधु वहाँ ठहरा हुआ है, तब वे तपाक से उनके पास पहुँचे और कहने लगे—'तुम कौन से साधु हो और क्यो ठहरे हो।'

गुरुदेव पडितजी के भाव को ताड गये। उन्होने अत्यन्त शान्त वाणी मे उत्तर दिया पडितजी बैठिये। अगले जमाने मे गृहस्थी लोग वनो मे जाकर साधुओ की सेवा किया करते थे। आज नगर मे आए हुए साधुओं की सेवा करना तो दूर रहा, उन्हे रात बिताने के लिए अढाई हाथ जमीन भी गृहस्थी नही देते। अपने घर की जमीन तो दूर रही, मुसाफिरो के लिए ही जो स्थान है, उस स्थान मे भी—एक मुसाफिर समझकर भी, क्या अढाई हाथ जमीन साधु को देना गृहस्थी के लिए दुखदायी है? आप पडित हैं। धर्म-शास्त्र के ज्ञाता हैं। अन्यान्य हिन्दू शास्त्रो को आपने पढा है। वशिष्ठ स्मृति भी जरूर देखी होगी कि उसमे लिखा है—'ब्रह्मचारी-स्नातक राजा की अपेक्षा भी पूज्य और बडे होते हैं। एक ओर राजा आते हो और दूसरी ओर से ब्रह्मचारी तो राजा को चाहिये कि वह ब्रह्मचारी को प्रणाम कर एक ओर हट जाय और उसे निकल जाने दे।'

भट्टजी पूज्य गुरुदेव के पांडित्य को देखकर चकित हो गये, फिर भी उनका अहम् समाप्त नही हुआ था। वे बोले महाराज आज साधुओ के वेष मे अनेक लुच्चे लफगे फिरते हैं, इसलिए हम किसी साधु को यहाँ ठहरने नही देते।

तब पूज्य गुरुदेव ने श्री भर्तृहरि के श्लोक द्वारा पडितजी को समझाया

> अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृशदि वा।
> मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा॥
> तृणे वा स्त्रणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसा
> क्वचित्पुण्येऽरण्ये शिव ! शिव ! शिवेति प्रलपत ॥

हे प्रभो ! मैं किसी ऐसे पवित्र वन मे वसना चाहता हूँ कि जिसमे रहकर सर्प को और हार को, फूलो की सेज और शिला को, मणि को और पत्थर को, बलवान रिपु को और मित्र को, तृण को औरस्त्रियो के समूह को, सभी को समान रूप मे देखूं और शिव-शिव रटते हुए अपना समय बिता सकू ।

पडितजी गुरुदेव की विद्वत्ता से अवाक् रह गये। उनको ऐसे विद्वान् और शान्त साधु के दर्शन पहले कभी नही हुए थे। उन्होने कहा 'महात्माजी ! मुझे बताइये, आप किस सम्प्रदाय के साधु हैं ?'

पडितजी—मैं जैन साधु हूँ। जैन साधु पचमहाव्रतधारी होते हैं अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को पालन करने वाले। हम लोग रात्रि को भोजन नही करते। धन-सम्पत्ति नही रखते। अपने घर की दौलत छोडकर मधुकरी मागकर शुद्ध शाकाहारी भोजन करते हैं। अपना पेट भरने योग्य आहार किसी एक घर से नही लेते। चातुर्मास को छोडकर किसी एक स्थान पर नही ठहरते। नशीली वस्तुओ—जैसे भाग, गाँजा, अफीम, धूम्रपान, मद्यपान आदि—का सेवन नही करते। सर्वत्र पैदल विहार करते हैं।

हमे किसी का भय नही है, क्योकि माया-प्रपच, कचन-कामिनी से सदा दूर रहते हैं।

न च राजभय न च चौरभयम्।
न च वृत्तिभय न वियोगभयम्।
इहलोकसुख परलोकसुख।
श्रमणत्वमिद रमणीयतरम्।●

[साधु जीवन मे न तो राज्य का भय है, न चोर का भय है, न वृत्ति अर्थात् आजीविका का भय है और न वियोग का भय है। इस भव मे भी सुख है और परभव मे भी सुख है, अतएव साधु जीवन रमणीय है।]

फिर उन्होने पडितजी की ओर सौम्यभाव से देखा और कहा पडितजी! आप विद्वान् हैं। शास्त्रो के ज्ञाता हैं, आप सबको प्रेमभाव से देखो, समदृष्टि रखो। शास्त्र कथन है

डहरे य पाणि वुड्ढे य पाणे,
ते अत्तओ पासइ सव्वलोए।
उव्वेहई लोगमिण महन्त,
बुद्धो पमत्तेसु (सुबुद्धाऽपमत्तो) परिव्वएज्जा।
—श्री सूत्र कृतांग श्रु० २ अ० १२ गाथा १८

अर्थात्—बुद्धिमान मनुष्य को मोहनिद्रा मे सोने वाले मनुष्यो के बीच रहकर ससार के छोटे-बडे सभी प्राणियो को अपनी आत्मा के समान देखना चाहिये। समदर्शिता के भाव से इस महान् विश्व का निरीक्षण करना चाहिये।

पडित जी का अहकार गल गया था, वे अब तक अपने को बडा विद्वान् मानते थे परन्तु आज उन्हें अपनी कूपमण्डूकता का अनुभव

● अध्यात्म कल्पद्रुम यतिशिक्षा त्रयोदश अधिकार ३८ श्लोक की टीका से साभार उद्धृत। टीकाकार मुनिश्री धनविजयजी गणी।

हुआ। उन्होने आश्चर्यदृष्टि से पूज्य गुरुदेव की ओर देखा अहा ! यह सागर और मैं कुएँ का मेढक। इतनी विद्वत्ता, फिर भी इतनी नम्रता। सत्य है 'जब पेड, फल-फूलो से पूर्णतया लद जाता है, तब वह झुक जाता है।' उनको स्मरण हो आया—अहकार अज्ञान की निशानी है। पडितजी श्रद्धा भाव से पूज्य गुरुदेव के चरण-पद्मो मे झुक गये। मगलमूर्ति पूज्य श्री ने उनको आशीर्वाद दिया।

पडितजी ने श्रद्धा भाव से वहाँ से प्रस्थान किया, परन्तु अब वे हलके हो गये थे, गव की भारी गठरी सिर पर लादे इतने दिनो तक घूमते रहे। आज वह बोझ नीचे गिर गया था। जब सिर से बोझा उतर जाता है, तब भार मुक्त प्राणी को आनन्द का अनुभव होता है। आनन्द-प्रकाश पडितजी के मुखमडल पर दमक रहा था। पहली बार उन्हे यह ज्ञात हुआ कि नम्रता मनुष्य की सुन्दरतम मणि है।

जब से लक्ष्मणदास पूज्य गुरुदेव की शरण में आया, तब से वह सदा उनके साथ ही रहता। पडितजी और गुरुदेव का वार्तालाप उसने ध्यानपूर्वक सुना था। ऐसे अनेक विद्वान् पूज्यश्री के पास आते थे और अमृतवाणी से गुणानुरागी हो जाते थे। अनेक प्रसगो पर वह पूज्य गुरुदेव की विद्वत्ता, समदर्शिता एव उदारता देख चुका था। उनकी विलक्षण प्रतिभा और अनुपम सरलता अद्वितीय थी। उसके मन मे अब तीव्र विचार तरगें उठने लगी अब गुरुदेव उसकी दीक्षा मे विलम्ब क्यो कर रहे हैं? अब मैं ससारी बन कर नही रहूगा। क्षण भर भी रहने की इच्छा नही है। पूज्यश्री की मुझ पर पूर्ण अनुकम्पा है, फिर यह देरी क्यो ? यह विचार लक्ष्मण के मन मे बार-बार उठता। फिर आशा का इन्द्रधनुष हृदय गगन में खिल जाता। क्षण भर वह आनन्द-लोक मे खो जाता। मुनि भेष में पूज्य चरण पद्मो की सेवा मे लीन हो जाता। कभी पावन करकमलो का स्पर्श उसे हर्ष-

विभोर कर देता। फिर ध्यान की धारा टूटती, तब वह कुछ उदास हो जाता।

वसन्त ऋतु का शुभागमन हुआ। पुष्प गन्ध को लेकर वायु बहने लगी। वन श्री की शोभा निराली थी। ऐसे सुहावने दृश्य को देखकर महाकवि आनन्दवर्धनाचार्य की ये पक्तियाँ स्मरण हो आती हैं

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था काव्ये रस परिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभाति मधुमास इव द्रुमा।

वे ही पुराने वृक्ष हैं, पर वसन्त के रस सचार से उन्हे नवीन रूप मिल जाता है। किसी मे नवीन कोपलें निकल जाती हैं, किसी में पुष्पो का विलास प्रकट हो जाता है।

इस वसन्तागमन के साथ-साथ पूज्य गुरुदेव का शुभागमन सवत् १९५४, चैत्रमास के शुक्लपक्ष मे नारोवल नगर मे हुआ। नारोवल के उपाश्रय भवन मे नित्य व्याख्यान का आयोजन होता। एक दिन गुरुदेव ने अपने प्रवचन मे अप्रमत्त सूत्र की सुन्दर व्याख्या की

जैसे रात्रियो के बीतने पर वृक्ष के पके पीले पत्ते अपने आप झड जाते है, वैसे ही मनुष्यो का जीवन भी आयु समाप्त होने पर नष्ट हो जाता है। इसलिए हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

दीर्घकाल के बाद भी प्राणियो को मनुष्य-जन्म मिलना बडा दुर्लभ है। पूर्व सचित कुसस्कारो के विपाक (परिणाम) अत्यन्त भयानक होते हैं। अर्थात् दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी अपने पूर्वसचित कुसंस्कारो से उसको सफल बनाना बडा कठिन है। अत हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

जैसे कमल शरद्काल के निर्मल जल को भी नही छूता और अलिप्त रहता है, वैसे ही ससार से अपनी समस्त आसक्तियो को मिटा-

कर, सब प्रकार के स्नेह बन्धनो से रहित हो जा। अत गौतम !
क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

और अन्त मे अत्यन्त कृपालु प्रभु ने अपने प्रिय शिष्य को
उपदेश दिया

तिण्णो हु सि अण्णव मह
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पार गमित्तए,
समय गोयम ! मा पमायए।

'तू इस प्रपचमय विशाल ससार-समुद्र को तैर चुका है। भला
किनारे पहुँच कर तू क्यो अटक रहा है ? उस पार पहुँचने के लिए
शीघ्रता कर। हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

पूज्य श्री की अमृतवाणी का प्रभाव अचूक था। लक्ष्मण के
अन्तमन मे जैसे सहस्र दीप प्रज्वलित हो गये। उस उज्ज्वल ज्योति
मे उसने देखा—स्वय का प्रतिबिम्ब। साधुवेश मे वह गुरुदेव की
चरणसेवा कर रहा है। गुरुदेव का कोमल कर उसके शीश पर
सुशोभित है। 'अहा ! यह वरद हस्त सदा सर्वदा मेरे मस्तक पर
रहे। मेरे मस्तक मणि ! जीवन नौका के कुशल खेवन हार, मेरे
कृपालु सद्गुरु !' लक्ष्मण दिवा स्वप्न मे खो गया। व्याख्यान
समाप्त हुआ। भोजनोपरान्त लक्ष्मण पूज्य श्री के पद-पद्मो मे मौन
मुद्रा मे बैठा रहा।

पूज्य गुरुदेव ने देखा—लक्ष्मण उदास है, कोई न कोई चिंता
उसे सता रही है। हो सकता है, घर की याद आ गई है। किशोर-
अवस्था मे बाल सुलभ चचलता स्वाभाविक है। उन्होने प्रिय
लक्ष्मण के सिर को छूते हुए पूछा—लक्ष्मण तू आज कुछ खोया-
खोया लगता है। उदास क्यो है ? क्या घर की याद आ रही है ?
भगतजी तो अभी आकर ही गये हैं। कहो, क्या बात है बेटा ?

गुरुदेव के इन शब्दो ने लक्ष्मण को झकझोर दिया। जो मानस वीणा मौन थी, वह झनझना उठी। वह विनीत स्वर मे बोला—पूज्य गुरुदेव! मुझे सचमुच घर की याद आ रही है, अब मैं अपने घर लौटना चाहता हू, शीघ्र आज्ञा दीजिये।

पूज्य श्री ने सयत स्वर मे कहा—पवन स्वतन्त्र है, वह कही भी वह सकता है, तुम स्वतन्त्र हो, मैं बाधकर रखना नही चाहता, तुम खुशी से जाओ और सद्जीवन बिताओ।

'परन्तु गुरुदेव! मेरा घरबार तो यही है।' लक्ष्मण ने कहा।

'इस नारोवल नगरी मे क्या किसी गृहस्थ के यहाँ रहोगे?' गुरुदेव ने विस्मय मे पूछा।

'नही दीनानाथ! मेरे घरबार तो आपके चरणकमल ही हैं। अब क्यों विलम्ब कर रहे हो, मेरे खेवनहार! पूज्य गुरुदेव! आपने आज ही अप्रमत्त सूत्र पर प्रवचन दिया है। भगवन्! ये शब्द बार बार मेरे अन्तर्मन मे गूँज रहे है—

तिण्णो हु सि अण्णव महं

तू प्रपचमय इस विशाल ससार समुद्र को तैर चुका है, भला किनारे पहुँच कर तू क्यो अटक रहा है। उस पार पहुँचने के लिए शीघ्रता कर। शीघ्रता कर। क्षण भर भी प्रमाद न कर। प्रमाद न कर। समय गोयम-मा पमायए।

अब मैं इस भव पक मे क्षण भर भी नही रहना चाहता। कृपालु, अब कौन सी परीक्षा बाकी है?'

गुरुदेव लक्ष्मण की आतुरता और उत्कण्ठा को भाप गये। उन्होने लक्ष्मण को आश्वस्त करते हुए कहा—तुम्हारी परीक्षा हो चुकी है, लक्ष्मण!—स्वर्ण तपकर पूर्णतया शुद्ध बन गया है—तप्त तप्त पुनरपि काञ्चन कान्तवर्णम्। अब केवल आभूषण गढना है। स्वर्णकार तयार है—आभूषण गढ़ने के लिए।

प्रभु ! आभूषण गढने का कौनसा मुहूर्त है ?

शुभ मुहूर्त मे सभी कार्य सम्पन्न होने चाहिए। धीरज के फल मीठे होते है। पर लक्ष्मण यह बताओ—मैं कौनसा आभूषण बनाऊँ ?

यह कहते-कहते करुणामूर्ति गुरुदेव ने कोमल कर से लक्ष्मण के मस्तक को छुआ। वह रोमाचित हो गया। उसने हर्षविभोर होकर कहा—मुक्ताहार।

'मुक्ताहार' लक्ष्मण के मुख से 'मुक्ताहार' नाम सुनकर गुरु-देव गद्गद् हो गये। उन्होने प्रसन्नचित्त से कहा—

'मुक्ति-मुक्ताहार। लक्ष्मण मने तुम्हारी दीक्षा का निर्णय कर लिया है। तुम्हारी उत्कठा को मैं जानता हू। अत मैंने तुम्हारी दीक्षा का शुभ मुहूर्त भी निकाल लिया है।

इस पीयूष वाणी से लक्ष्मण की हृदयलता आनन्दपुष्पो से खिल गई। उसने आश्चर्यपूर्वक कृपालु गुरुदेव को पूछा—'वह शुभ दिन कौनसा है पूज्यतम ?'

सवत् १६५४, वैशाख शुक्ला अष्टमी। नारोवाल के श्री सघ को इस दीक्षा महोत्सव के प्रति अत्यधिक उत्साह है, अत मैंने उनको सहर्ष स्वीकृति दे दी है।

यह कहते हुए गुरुदेव मुस्कराने लगे। उस मुस्कान-मिठाई को चखकर लक्ष्मण प्रफुल्लित हो गया। अतीव आनन्द के कारण वह कल्पलता के समान खिल गया। अतिशय आनन्दावस्था मे उसकी मुख-वीणा पर योगिराज आनन्दघन जी महाराज का यह गीत भकृत हुआ।

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज क्युं कर देह धरेंगे। अब० ॥१॥
राग दोस जग बध करत हैं, इनको नास करेंगे।
मर्यो अनन्त काल ते प्राणी, सो हम काज हरेंगे। अब० ॥२॥

आने लगी। लक्ष्मण दास का उत्साह दूज के चन्द्रमा के समान बढने लगा।

नारोवाल नगरी मे वैशाख शुक्ला प्रतिपदा से ही उत्सव रचे जाने लगे। स्वामिवात्सल्य एव पूजोत्सव का ठाठ ही निराला था। जिनालय देव-विमान के समान दीखने लगे।' शोभा-यात्रा मे उमग देखते ही बनती थी और राजकुमार के समान रजत रथ मे शोभित लक्ष्मणदास देवकुमार के समान लगते थे। पूज्य आचाय देव उस जुलूस मे सम्मिलित थे। अन्य मुनिराजगण के साथ वे ऐसे लगते थे जैसे तारक दल मे चन्द्र। उनके मुख-मडल पर प्रभामण्डल की तेजस्विता थी। महापुरुषो के मुख पर जो प्रभामण्डल चमकता है उसका कारण जीव-विद्युत् (बायो इलेक्ट्रिसिटी) ही है। परा मनो-विज्ञान के जन्मदाता डॉ राइन के सहयोग से प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ कोनामक ने प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि यह विद्युत् शक्ति निर्मल आत्मशक्ति का सहज परिणाम है। मनुष्य आन्तरिक शुद्धि के द्वारा अपने विद्युत् क्षेत्र का प्रभाव बढा कर ज्योतिर्मय और प्रभामण्डल युक्त बन सकता है। साइकोकाइनेसिस तथा टेलिकाइ-नेसिस नामक विज्ञान की शाखाओ ने यह सिद्ध कर दिया है।

प्रभामण्डल से युक्त गुरुदेव सबके आकर्षण के केन्द्र थे। सम्वत् १६५४, वैशाख शुक्ला अष्टमी का सुप्रभात। नारोवाल नगरी मे मङ्गल बाजे बजने लगे। दीक्षा महोत्सव के उपलक्ष में भव्य जुलूस निकला। नारोवाल नगरी की सजावट अद्वितीय थी। समीप और दूर के हजारो लोग इस अवसर पर पधारे थे। गुरुदेव की उपस्थिति के कारण शोभा यात्रा भव्य बन गई। जयघोष की मङ्गल ध्वनि से गगन गूँज उठा। ऐसा लगता था कि आनन्दोल्लास साकार रूप धारण कर नारोवाल की पावन भूमि पर उतर गया हो।

आम्र वृक्ष की कल्प छाया तले लक्ष्मण ने राजसी वेशभूषा का परित्याग किया— आभूषण उतार लिये। पूज्य गुरुदेव के कर-कमलो से दीक्षा-कार्यक्रम विधिवत् सम्पन्न हुआ। मुनिवेश मे लक्ष्मण दास अत्यन्त ललित दिखाई देते थे। पीली चादर ओढे हुए पीताम्बरधारी कृष्ण से लगते थे।

लक्ष्मणदास के मनोरथ पूर्ण हुए। आनन्द की ऊर्मियो से समस्त शरीर रोमाचित हुआ। अतिशय आनन्द भाव मे मनुष्य प्राय मौन रहता है, परन्तु अन्तर्वाणी मुखरित होती है। लक्ष्मणदास अब अन्तर्मुखी हो गये। पूज्य गुरुदेव का चरणामृत पीकर वे मस्त हो रहे थे। उस मस्ती की लाली उनके अग-प्रत्यग मे स्पष्ट दिखाई देती थी। पग-पग मे उल्लास के घु घरु बजते थे, नेत्र निराली चमक से दीप्त थे। मुखाकृति पर आनन्द की मधुरिमा झलकती थी।

चिदानन्द आनन्द मूरति।
निरख प्रेम भर बुद्धि ठगी री।

'प्रेम के दर्पण मे आनन्दमूर्ति का प्रतिबिम्ब। अहा! मेरी आनन्दमूर्ति मेरे पूज्य गुरुदेव।' लक्ष्मणदास आनन्दमूर्ति के दर्शन करने लगे।

नव दीक्षित लक्ष्मणदास का नाम मुनि ललित विजय रखा गया। ललित अर्थात् सुदर। अब ललित अपने जीवन मे लालित्य लाने के लिए लालायित हो गये।

भगतजी इस उत्सव मे विशेष रूप से आमत्रित किये गये थे। वे इस उत्सव के राग-रग से अतिशय प्रभावित हुए। उन्होने अत्यन्त भावभक्ति प्रदर्शित की तथा नव-दीक्षित मुनिराज के चरणो मे श्रद्धापूर्वक वन्दना की। भगतजी प्रसन्न मन से उपाश्रय भवन के बाहर आये। उनकी ऐसी दशा थी कि कोई हीरो का व्यापारी अपने कीमती हीरे को बेचकर और मनचाहा मूल्य प्राप्त कर घर लौटता

आने लगी। लक्ष्मण दास का उत्साह दूज के चन्द्रमा के समान बढने लगा।

नारोवाल नगरी मे वैशाख शुक्ला प्रतिपदा से ही उत्सव रचे जाने लगे। स्वामिवात्सल्य एव पूजोत्सव का ठाठ ही निराला था। जिनालय देव-विमान के समान दीखने लगे। शोभा-यात्रा में उमग देखते ही बनती थी और राजकुमार के समान रजत रथ मे शोभित लक्ष्मणदास देवकुमार के समान लगते थे। पूज्य आचार्य देव उस जुलूस मे सम्मिलित थे। अन्य मुनिराजगण के साथ वे ऐसे लगते थे जैसे तारक दल मे चन्द्र। उनके मुख-मडल पर प्रभामण्डल की तेजस्विता थी। महापुरुषो के मुख पर जो प्रभामण्डल चमकता है उसका कारण जीव-विद्युत् (बायो इलेक्ट्रिसिटी) ही है। परा मनो-विज्ञान के जन्मदाता डॉ राइन के सहयोग से प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ कोनामक ने प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि यह विद्युत् शक्ति निर्मल आत्मशक्ति का सहज परिणाम है। मनुष्य आन्तरिक शुद्धि के द्वारा अपने विद्युत् क्षेत्र का प्रभाव बढा कर ज्योतिर्मय और प्रभामण्डल युक्त बन सकता है। साइकोकाइनेसिस तथा टेलिकाइ-नेसिस नामक विज्ञान की शाखाओं ने यह सिद्ध कर दिया है।

प्रभामण्डल से युक्त गुरुदेव सबके आकर्षण के केन्द्र थे। सम्वत् १९५४, वैशाख शुक्ला अष्टमी का सुप्रभात। नारोवाल नगरी मे मङ्गल बाजे बजने लगे। दीक्षा महोत्सव के उपलक्ष मे भव्य जुलूस निकला। नारोवाल नगरी की सजावट अद्वितीय थी। समीप और दूर के हजारो लोग इस अवसर पर पधारे थे। गुरुदेव की उपस्थिति के कारण शोभा यात्रा भव्य बन गई। जयघोष की मङ्गल ध्वनि से गगन गूँज उठा। ऐसा लगता था कि आनन्दोल्लास साकार रूप धारण कर नारोवाल की पावन भूमि पर उतर गया हो।

आम्र वृक्ष की कल्प छाया तले लक्ष्मण ने राजसी वेशभूषा का परित्याग किया– आभूषण उतार लिये। पूज्य गुरुदेव के कर-कमलो से दीक्षा-कार्यक्रम विधिवत् सम्पन्न हुआ। मुनिवेश मे लक्ष्मण दास अत्यन्त ललित दिखाई देते थे। पीली चादर ओढे हुए पीताम्बरधारी कृष्ण से लगते थे।

लक्ष्मणदास के मनोरथ पूर्ण हुए। आनन्द की ऊर्मियो से समस्त शरीर रोमाचित हुआ। अतिशय आनन्द भाव मे मनुष्य प्राय मौन रहता है, परन्तु अन्तर्वाणी मुखरित होती है। लक्ष्मणदास अब अ तर्मुखी हो गये। पूज्य गुरुदेव का चरणामृत पीकर वे मस्त हो रहे थे। उस मस्ती की लाली उनके अग-प्रत्यग मे स्पष्ट दिखाई देती थी। पग-पग मे उल्लास के घु घरु बजते थे, नेत्र निराली चमक से दीप्त थे। मुखाकृति पर आनन्द की मधुरिमा झलकती थी।

चिदानन्द आनन्द मूरति।

निरख प्रेम भर बुद्धि ठगी री।

'प्रेम के दर्पण मे आनन्दमूर्ति का प्रतिबिम्ब। अहा! मेरी आनन्दमूर्ति मेरे पूज्य गुरुदेव।' लक्ष्मणदास आनन्दमूर्ति के दर्शन करने लगे।

नव दीक्षित लक्ष्मणदास का नाम मुनि ललित विजय रखा गया। ललित अर्थात् सुन्दर। अब ललित अपने जीवन मे लालित्य लाने के लिए लालायित हो गये।

भगतजी इस उत्सव मे विशेष रूप से आमन्त्रित किये गये थे। व इस उत्सव के राग-रग से अतिशय प्रभावित हुए। उन्होने अत्यन्त भावभक्ति प्रदर्शित की तथा नव-दीक्षित मुनिराज के चरणो मे श्रद्धापूर्वक वन्दना की। भगतजी प्रसन्न मन से उपाश्रय भवन के बाहर आये। उनकी ऐसी दशा थी कि कोई हीरा का व्यापारी अपने कीमती हीरे को बेचकर और मनचाहा मूल्य प्राप्त कर घर लौटता

है। आनन्द की लहर में उनके मुखारविंद से अनायास कोई न कोई गीत फूट पडता था। उपाश्रय के बाहर जब सहसा यह स्वर लहरी गूंज उठी, तब नव दीक्षित मुनिराज ललित विजय पुलकित हो गये

बेर बेर नहि आवे, अवसर बेर बेर नहि आवे,
ज्यु जाणे त्यु करले भलाई, जनम जनम सुख पावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।१।
तन धन जोवन सब ही झूठो, प्राण पलक मे जावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।२।
तन छूटे धन कौन काम को, काहे को कृपण कहावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।३।
आनदघन प्रभु चलत पथ मे, समर समर गुण गावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।४।

मुनिराज ने देखा कि भगतजी गाते-गाते दूर चले गये हैं। परन्तु उन्होने सोचा कि यह गीत इस अवसर के अनुकूल है। भगतजी की विशेषता थी कि अवसरानुसार उनके मुख से उपयुक्त गीत सहज ही प्रसूत हो जाता था। स्वय नव दीक्षित मुनिराज को अनेक गीत याद थे, इसलिए उनकी मानस वीणा पर इस गीत की स्वर लहरी भीतर ही भीतर आनन्द का सचार कर रही थी।

दीक्षोत्सव के पश्चात् विशाल जन समुदाय सभा मडप मे पहुचा। गुरुदेव अन्य मुनिराजो के साथ जब सभा मडप मे पधारे, तब जनता ने जय-जयकार किया। गुरुदेव पाट पर विराजमान हुए—अन्य साधु-मुनिराजो ने यथोचित आसन ग्रहण किये। नव दीक्षित मुनिराज ललित विजय भी प्रसन्न मुद्रा मे बैठ गये। उस दिन गुरुदेव ने 'विनय की महिमा' पर अत्यन्त शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया।

१– धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम फल है।

२– विनय से अहकार का नाश होता है।

३– जो विनम्र नही है, वह दु ख जाल मे फँसता है और जो विनम्र है, वह सुख-सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

४– जो मनुष्य ज्ञान, तप, जाति और उच्च कुल के मिथ्याभिमान से दूर रहता है, वह सज्जन है।

५– मिथ्याभिमान और आडम्बर को छोड दो क्योकि ये आत्मोद्धार मे बाधक है।

६– विनय धम की जड है। मोक्ष इसका फल है। विनय से शास्त्र ज्ञान की तुरन्त प्राप्ति हो जाती है, इससे मिथ्याभिमान मिट जाता है। जीवन मे लाघवता आती है, फलस्वरूप मनुष्य पाप-बोझ से मुक्त होकर हलका हो जाता है। इससे यश-सुगन्ध फैलती है और अन्त मे मुक्ति मिलती है।

७– बुद्धिमान मनुष्य विनय गुण से शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करते हैं, तप से विषय भोगो से दूर रहते हैं तथा उत्तम चारित्र द्वारा अपनी वासनाओ को जीत लेते हैं।

८– विनय मे मनुष्य को यश, विद्या, प्रशसा और कल्याण की तुरत प्राप्ति होती है, अत विनय शाश्वत कल्पवृक्ष है।

९– विनय सद्गुण-खान है।

१०– विना भेद-भाव के प्राणि-मात्र के प्रति आदर रखना विनय है।

११– विनय सीप है जिसमे समता का मोती उत्पन्न होता है, अत विवेकी मनुष्य विनय को ग्रहण करते हैं और अविनय मे दूर रहते हैं।

है। आनन्द की लहर मे उनके मुखारविंद से अनायास कोई न कोई गीत फूट पडता था। उपाश्रय के बाहर जब सहसा यह स्वर लहरी गूंज उठी, तब नव दीक्षित मुनिराज ललित विजय पुलकित हो गये

बेर बेर नहि आवे, अवसर बेर बेर नहि आवे,
ज्यु जाणे त्यु करले भलाई, जनम जनम सुख पावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।१।
तन धन जोवन सब ही झूठो, प्राण पलक मे जावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।२।
तन छूटे धन कौन काम को, काहे को कृपण कहावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।३।
आनदघन प्रभु चलत पथ मे, समर समर गुण गावे।
अवसर बेर बेर नहि आवे।४।

मुनिराज ने देखा कि भगतजी गाते-गाते दूर चले गये हैं। परन्तु उन्होने सोचा कि यह गीत इस अवसर के अनुकूल है। भगतजी की विशेषता थी कि अवसरानुसार उनके मुख से उपयुक्त गीत सहज ही प्रसूत हो जाता था। स्वय नव दीक्षित मुनिराज को अनेक गीत याद थे, इसलिए उनकी मानस वीणा पर इस गीत की स्वर लहरी भीतर ही भीतर आनन्द का सचार कर रही थी।

दीक्षोत्सव के पश्चात् विशाल जन समुदाय सभा मडप मे पहुचा। गुरुदेव अन्य मुनिराजो के साथ जब सभा मडप मे पधारे, तब जनता ने जय-जयकार किया। गुरुदेव पाट पर विराजमान हुए—अन्य साधु-मुनिराजो ने यथोचित आसन ग्रहण किये। नव दीक्षित मुनिराज ललित विजय भी प्रसन्न मुद्रा म बैठ गये। उस दिन गुरुदेव ने 'विनय की महिमा' पर अत्यन्त शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया।

१– धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम फल है।

२– विनय से अहंकार का नाश होता है।

३– जो विनम्र नही है, वह दु ख जाल मे फँसता है और जो विनम्र है, वह सुख-सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

४– जो मनुष्य ज्ञान, तप, जाति और उच्च कुल के मिथ्याभिमान से दूर रहता है, वह सज्जन है।

५– मिथ्याभिमान और आडम्बर को छोड दो क्योंकि ये आत्मोद्धार मे बाधक हैं।

६– विनय धर्म की जड है। मोक्ष इसका फल है। विनय से शास्त्र ज्ञान की तुरन्त प्राप्ति हो जाती है, इससे मिथ्याभिमान मिट जाता है। जीवन मे लाघवता आती है, फलस्वरूप मनुष्य पाप-बोझ से मुक्त होकर हलका हो जाता है। इससे यश-सुगन्ध फैलती है और अन्त मे मुक्ति मिलती है।

७– बुद्धिमान मनुष्य विनय गुण से शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करते हैं, तप से विषय भोगो से दूर रहते है तथा उत्तम चारित्र द्वारा अपनी वासनाओ को जीत लेते हैं।

८– विनय से मनुष्य को यश, विद्या, प्रशसा और कल्याण की तुरन्त प्राप्ति होती है, अत विनय शाश्वत कल्पवृक्ष है।

९– विनय सद्गुण-खान है।

१०– बिना भेद-भाव के प्राणि-मात्र के प्रति आदर रखना विनय है।

११– विनय सीप है जिसमे समता का मोती उत्पन्न होता है, अत विवेकी मनुष्य विनय को ग्रहण करते है और अविनय से दूर रहते हैं।

पूज्य गुरुदेव का प्रवचन समयानुकूल था। इस अमृत पान से श्रोतागण तृप्त हो गये। सहस्रों मुख श्रद्धाभाव से गुरुदेव की जय-जयकार करने लगे।

अन्य मुनिराज व नवदीक्षित मुनि श्री ललित विजय ने अपने पूज्य गुरुदेव को श्रद्धाभक्ति से इस प्रकार देखा जैसे चकोर पक्षी चन्द्र की ओर देखता है।

यद्यपि यह प्रवचन सबके लिए कल्याणकारी था, परन्तु मुनि ललित विजय को इससे विशेष स्फूर्ति मिली। उन्होंने संकल्प किया मैं आजीवन विनयपूर्वक गुरुदेव की सेवा करूँगा। विनय गुण द्वारा मैं उनका प्रीतिभाजन बनूँगा।

६

विद्या देवी की शरण में

दीक्षोपरान्त मुनि ललितविजय ज्ञान साधना मे लीन हो गये। उन्होने सोचा कि गुरुदेव महान् है और मैं लघु। नदी की जलधारा रत्नाकर मे मिलकर ही पूर्णता प्राप्त करती है। पूज्य गुरुदेव के चरण-सरोज मे समर्पण, अर्थात् लघुता का महानता मे विसर्जन। यही है मेरा लक्ष्य। इस समर्पण के लिए मैं पूर्णतया योग्य बनूंगा। विद्यादेवी की उपासना मे ही मैं वह पात्रता प्राप्त कर सकूंगा। यह विचार कर मुनिश्री सरस्वती देवी की साधना मे लग गये। पूज्य गुरुदेव के मार्गदर्शन मे आपने सर्वप्रथम सम्पूर्ण 'साहुक्रिया' सीखी। शास्त्राध्ययन हेतु आपने प्राकृत एव संस्कृत भाषाओ का विशद ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दी, गुजराती पजाबी और उर्दू भाषाओ के आप मर्मज्ञ थे। भाषा शुद्धि के लिए आपने सारस्वत-चन्द्रिका आदि व्याकरण ग्रन्थो का अध्ययन किया। जीवविचार, नव-तत्त्व तथा कर्मग्रन्थो का अनुशीलन करने के पश्चात् आपने स्याद्वाद मजरी का अध्ययन किया। आपने संस्कृत भाषा के सु-प्रसिद्ध काव्यो को पढा, जैसे रघुवश, कुमारसम्भव, अभिज्ञान शाकुन्तलम्। विद्यावारिधि पूज्य गुरुदेव के चरणो मे आपने आगम-शास्त्रो को पढा जिनमे उल्लेखनीय है—आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि। महर्षि उमास्वाति कृत श्री तत्त्वार्थसूत्र का आपने चिंतन मनन व परिशीलन किया। इस प्रकार विद्यादेवी की साधना से आपका विनय गुण और भी प्रकाशित

हो गया। ज्यो-ज्यो आप विद्या की गरिमा से अलंकृत होने लगे, त्यो-त्यो आप मे लघुता आती गई। आप कहा करते थे–विशाल एव विराट हिमालय से बहने वाली गगा-जमुना नदिया को भूमि पर उतरना ही पडता है–अन्यथा उनका कोई महत्त्व नही। वैसे ही गुणवान मनुष्य नम कर चलते हैं। वृक्ष की जड भूमि मे जितनी नीचे जाती है, उतनी ही उसकी विशालता और रम्यता ऊपर प्रकट होती है। भूमि की गहराई मे जाने वाली जड रसग्रहण करने की अद्भुत शक्ति रखती है, यही रहस्य है विशाल वृक्ष का। और जिस पेड की जड भूमि के ऊपर ही रहती है, अन्त मे गिर पडता है। विनय मनुष्यता की जड है। जितना ही मनुष्य विनयशील होगा, उतना ही वह गुण रस को सींचकर अपने जीवन को सुदर और महान बना सकेगा।

मुनिश्री पर विद्यादेवी की कृपा थी। वे कहते थे–यह सब गुरुदेव का प्रसाद है–मैं अकिंचन हू। जब वे चिन्तनधारा मे निमग्न हो जाते, तब प्राय गुरुदेव के उपकारो का स्मरण करते थे। जैसे पवन, कुसुम-सुगध बिखेरता है, वैसे ही मुनिश्री की वाणी पूज्य गुरुदेव का गुणगान करती थी। गुरु महिमा का बखान करते हुए वे योगिराज चिदानन्द महाराज कृत इस सरस पद को अपने मधुर कण्ठ से गाकर सुनाते थे—

वस्तुगते वस्तु का लक्षण, गुरुगम

निज छाया वेताल भरम कर, डरत वाल दिल-माहि रे ।
रज्जु सर्प करी कोऊ मानत, जौ लौं समझन नाहि रे ।वस्तु० ।५।
नलिनी भ्रम मकट मुठी जिम, भ्रमवश अति दु ख पावे रे ।
चिदानन्द चेतन गुरगम विन, मृगतृष्णा धरी धावे रे ।वस्तु०।६

— राग प्रभाती

[विना सद्गुरु के ज्ञान नही मिलता । ससार की मोह-माया से उद्धार करने वाले सुगुरु ही हैं । कुत्ता व मुर्गा काच के भवन मे अपने प्रतिविंव को देखकर दूसरे कुत्ते व दूसरे मुर्गे के भर्म मे महायुद्ध करते है—काच से टकराते हैं और घायल होते ह, इसी तरह माया के भ्रम मे अज्ञानवश मनुष्य लडते-झगडते हैं और दु खी होते है । सु दर, स्वच्छ स्फटिक शिला मे हाथी अपनी परछाई देखता है, उसे भ्रम हो जाता है कि अन्य हाथी सामने खडा है । भ्रमवश वह उससे भयकर युद्ध करता है । शिला पर टकराने का क्या नतीजा हाता है, अपने शरीर की ही हानि । सिह ने खरगोश को पकडा । अचानक उसने खाई मे झाका । खाई मे स्वच्छ जल भरा हुआ था । निमल जल दर्पण मे उसने अपने ही प्रतिविम्व को दूसरा सिंह समझा जो खरगोश को लिए हुए था । उसने सोचा कि इस अन्य सिंह ने मेरे शिकार को छीन लिया है । क्रोधवश उसने खरगोश को झटपट किनारे पर धर दिया और स्वय खाई मे कूद पडा, फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । अज्ञानवश मनुष्य भी इस प्रकार आत्मघात करता है । वालक अपनी ही परछाई को भूत समझकर भयभीत होता है । भ्रमवश रस्सी को सप मानकर डरने की कहानी युग युग से चली आ रही है । वन्दर घडे मे मुट्ठी वन्द कर द्वार-द्वार फिरता है, जव तक वह मुट्ठी खोलता नही, सकरे घडे से हाथ वाहर निकल नही पाता । ससार की मृगतृष्णा से भरमाया मनुष्य क्या-क्या नाटक नही करता ? सद्गुरु के विना ज्ञान नही मिलता आत्म-

स्वरूप की पहिचान नही होती फलस्वरूप अज्ञानवश जन्म जन्मान्तर भटकना पडता है, अत सद्गुरु महान उपकारी है। ज्ञान का अजन लगाकर आँखें खोलने वाले, सही मार्ग दिखाने वाले सद्गुर सचमुच तारण हार है।]

इस प्रकार मुनि श्री ललित विजयजी गुरुदेव की महानता और अपनी अकिंचनता का सदा उल्लेख किया करते थे। उनकी गुरभक्ति का एक प्रेरणादायक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करता हू।

पूज्य गुरुदेव का खभात मे चातुर्मास था। पजाब से गुरुभक्त दशनार्थ आये। उन दिनो मे पूज्य आचायदेव श्रीमद् वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज पजाब मे विराजते थे। दो दिन खभात मे रहकर पूज्य गुरदेव श्री ललितविजयजी महाराज की भाव-भक्ति करके पजाब के गुरुभक्त विदा हुए। वे स्टेशन पर पहुँचे और रेलगाडी ने प्रस्थान की सीटी बजाई। उस समय महाराज श्री व्याख्यान दे रहे थे। सीटी की आवाज सुनकर वे क्षण भर मौन हो गये, फिर प्रेम विभोर होकर बोले—हे पजाब के गुरुभक्तो! आप लोग पजाब मे विराजमान मेरे गुरुदेव को मेरा प्रणाम कहना और उनकी सेवाभक्ति करना।

इतना कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो गये। श्रोतागण भी इस अनुपम भक्ति से भाव विभोर हो गये।

अपने व्याख्यान के अतगत उन्होने गुरुदेव का गुणगान किया। उस अवसर पर उन्होने योगिराज आनन्दघन जी महाराज का एक पद मधुर कठ से गाकर सुनाया, जिसका भाव यह था, 'प्रभु महान है, मैं अकिंचन हूँ।' अपनी लघुता प्रकट करने वाले इस मधुर गीत से वातावरण भक्तिपूर्ण हो गया।

अवधू क्या मागु गुनहीना, वे गुन गनन प्रवीना।
गाय न जानु बजाय न जानु, न जानु सुरभेवा,

रीझ न जानु रीझाय न जानु, न जानु पदसेवा। अवधू।१।
वेद न जानु किताव न जानु, न जानु लक्षरण छंदा,
तरक वाद-विवाद न जानु, न जानु कवि फंदा। अवधू।१।
जाप न जानु जुवार न जानु न जानु कथवाता,
भाव न जानु, भगति न जानु, न जानु मीरा ताता,
ग्यान न जानु विज्ञान न जानु, न जानु भजनामा,
आनन्दघन प्रभु के द्वारे रटन करूँ गुणधामा। अवधू।४।
—राग आसावरी

लघुता, अकिंचनता, निनम्रता सत जना का सहज गुण है। इस लघुता के कारण मुनि श्री ललित विजयजी आगे चलकर पूज्य गुरुदेव के प्रीति-भाजन बन गये।

स्वरूप की पहिचान नही होती फलस्वरूप अज्ञानवश जन्म-जन्मान्तर भटकना पड़ता है, अत सद्गुरु महान उपकारी है। ज्ञान का अजन लगाकर आँखें खोलने वाले, सही मार्ग दिखाने वाले सद्गुरु सचमुच तारण हार है।]

इस प्रकार मुनि श्री ललित विजयजी गुरुदेव की महानता और अपनी अकिंचनता का सदा उल्लेख किया करते थे। उनकी गुरुभक्ति का एक प्रेरणादायक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करता हू।

पूज्य गुरुदेव का खभात मे चातुर्मास था। पजाब से गुरुभक्त दर्शनार्थ आये। उन दिनो में पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज पजाब मे विराजते थे। दो दिन खभात मे रहकर पूज्य गुरुदेव श्री ललितविजयजी महाराज की भाव-भक्ति करके पजाब के गुरुभक्त विदा हुए। वे स्टेशन पर पहुँचे और रेलगाडी ने प्रस्थान की सीटी बजाई। उस समय महाराज श्री व्याख्यान दे रहे थे। सीटी की आवाज सुनकर वे क्षण भर मौन हो गये, फिर प्रेम विभोर होकर बोले—हे पजाब के गुरुभक्तो! आप लोग पजाब मे विराजमान मेरे गुरुदेव को मेरा प्रणाम कहना और उनकी सेवाभक्ति करना।

इतना कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो गये। श्रोतागण भी इस अनुपम भक्ति से भाव विभोर हो गये।

अपने व्याख्यान के अन्तगत उन्होने गुरुदेव का गुणगान किया। उस अवसर पर उन्होने योगिराज आनदघन जी महाराज का एक पद मधुर कठ से गाकर सुनाया, जिसका भाव यह था, 'प्रभु महान है, मैं अकिंचन हूँ'। अपनी लघुता प्रकट करने वाले इस मधुर गीत से वातावरण भक्तिपूर्ण हो गया।

अवधू क्या मागु गुनहीना, वे गुन गनन प्रवीना।
गाय न जानु बजाय न जानु, न जानु सुरभेवा,

रीझ न जानु रीझाय न जानु, न जानु पदसेवा। अवधू।१।
वेद न जानु कितात्र न जानु, न जानु लक्षण छंदा,
तरव वाद विवाद न जानु, न जानु कवि फंदा। अवधू।१।
जाप न जानु जुवाव न जानु न जानु कथवाता,
भाव न जानु, भगति न जानु, न जानु सीरा ताता,
ग्यान न जानु विज्ञान न जानु, न जानु भजनामा,
आनन्दघन प्रभु के द्वारे रटन करूँ गुणधामा। अवधू।४।
—राग आसावरी

लघुता, अकिंचनता, विनम्रता सत जनो का सहज गुण है। इस लघुता के कारण मुनि श्री ललित विजयजी आगे चलकर पूज्य गुरुदेव के प्रीति-भाजन बन गये।

स्वरूप की पहिचान नही होती फलस्वरूप अज्ञानवश जन्म-जन्मान्तर भटकना पडता है, अत सद्गुरु महान उपकारी है। ज्ञान का अजन लगाकर आँखें खोलने वाले, सही माग दिखाने वाले सद्गुरु सचमुच तारण हार है।]

इस प्रकार मुनि श्री ललित विजयजी गुरुदेव की महानता और अपनी अकिंचनता का सदा उल्लेख किया करते थे। उनकी गुरुभक्ति का एक प्रेरणादायक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करता हू।

पूज्य गुरुदेव का खभात मे चातुर्मास था। पजाव मे गुरुभक्त दर्शनार्थ आये। उन दिनो मे पूज्य आचायदेव श्रीमद् वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज पजाव मे बिराजते थे। दो दिन खभात मे रहकर पूज्य गुरुदेव श्री ललितविजयजी महाराज की भाव-भक्ति करके पजाव के गुरुभक्त विदा हुए। वे स्टेशन पर पहुँचे और रेलगाडी ने प्रस्थान की सीटी वजाई। उस समय महाराज श्री व्याख्यान दे रहे थे। सीटी की आवाज सुनकर वे क्षण भर मौन हो गये, फिर प्रेम विभार होकर वोले—हे पजाव के गुरुभक्तो! आप लोग पजाव मे विराजमान मेरे गुरुदेव को मेरा प्रणाम कहना और उनकी सेवाभक्ति करना।

इतना कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो गये। श्रोतागण भी इस अनुपम भक्ति से भाव विभोर हो गये।

अपने व्याख्यान के अन्तगत उन्होने गुरुदेव का गुणगान किया। उस अवसर पर उन्होने योगिराज आनन्दघन जी महाराज का एक पद मधुर कठ से गाकर सुनाया, जिसका भाव यह था, 'प्रभु महान है, मैं अकिंचन हूँ।' अपनी लघुता प्रकट करने वाले इस मधुर गीत से वातावरण भक्तिपूण हो गया।

अवधू क्या मागु गुनहीना, वे गुन गनन प्रवीना।
गाय न जानु वजाय न जानु, न जानु सुरभेवा,

विजय वल्लभ सूरीश्वरजी के करकमलो द्वारा हुई थी। प्रभाव का यही कारण था।

पूज्य पन्यास श्री को चितातुर देखकर श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास चिंतित हो गये। चरणारविंद मे नमन करने के पश्चात् भक्तिभाव से उन्होने पूछा—गुरुदेव ! आज उदास दिखाई देते हो। क्या कारण है, पूज्यवर ?

पन्यास श्री क्षण भर मौन रहे, फिर शान्त भाव से बोले—भाग्यशाली ! गुजरावाला से पूज्य गुरुदेव श्रीमद्विजयवल्लभ-सूरीश्वरजी महाराज का पत्र आया है। उसे पढकर विचार मे पड गया हू।

'पत्र मे ऐसी क्या बात है, पूज्य गुरुदेव !' श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास भाई ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

पन्यासजी महाराज कुछ रुके, फिर पूज्य गुरुदेव का पत्र पढने लगे।

"तुम्हारे गुरुबन्धु उपाध्यायजी सोहनविजयजी ने अथक परिश्रम करके पजाब श्री सघ के अपूर्व सहयोग से श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल, गुजरावाला के लिए ६८ हजार रुपये एकत्रित किये हैं। ३२ हजार की रकम और चाहिए। एक लाख की रकम बिना गुरुकुल कैसे स्थापित होगा।"*

पूज्य पन्यासश्री ने जब यह पत्र पढा, तब उनकी आँखो से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने बार-बार उस पत्र को श्रद्धाभाव से मस्तक पर लगाया। पन्यास श्री पूज्य गुरुदेव के पत्रो को वन्दना करके पढते थे। कितनी श्रद्धा-भक्ति पूज्य गुरुदेव के प्रति थी ? इस अनुकरणीय भक्तिभाव को देखकर महाकवि तुलसी कृत राम-

---

* युगवीर आचार्य—द्वितीय भाग (गुजराती) लेखक फूलचन्द हरिचन्द दोशी, पृ० १४ से साभार उद्धृत।

विले पारले (बम्बई) का जैन उपाश्रय। पृ पन्यास श्री ललित विजयजी महाराज का चातुर्मास। सवत् १९९१। दोपहर का समय। उपाश्रय भवन मे पूज्य पन्यासजी मौन चिंतन मे मग्न थे। चिंता की झलक चेहरे पर प्रतिभासित होती थी। इतने मे बम्बई वासी गुरुभक्त श्रेष्ठि विठ्ठलदास ठाकुरदास दर्शनार्थ आए। पूज्य गुरुदेव श्री ललितविजय महाराज के प्रति श्रेष्ठि की अनन्य भक्ति थी। यद्यपि वे वैष्णव थे, परन्तु पूज्य गुरुदेव के उपदेशामृत से वे विशेष प्रभावित थे, वे उनके गुणानुरागी थे। अपने व्यापार-धन्धे मे व्यस्त रहते हुए भी ऐसे सत-महात्माओ की सगति का लाभ लेते रहते थे। पूज्य पन्यासजी श्री ललितविजयजी महाराज के प्रति उनका अनुराग अद्वितीय था। उपदेशामृत को पीकर वे जैन दर्शन के विशेष अनुरागी बन गये। अनेक जैन-जैनेतर पूज्य गुरुदेव श्री ललित विजयजी के पास दर्शनार्थ आते थे और वाणी सुधा से प्रभावित होकर उनके भक्त बन जाते थे। उनके व्यक्तित्व मे एक आकर्षण था—वाणी की मधुरता, सयम का तेज, ज्ञान की गभीरता और स्नेह की शीतलता। इन उज्ज्वल गुणरत्नो के प्रकाश से जनमानस आकर्षित हो जाता था। जो एक बार गुरुदेव के दर्शन कर लेता था, जो एक बार उनकी वाणी को सुन लेता था, वह मधुकर की भाति ललित पद-पद्मो मे मडराता था। कितने ही भूले-भटके गुरुदेव की कृपा से सत्पथगामी बन गये थे, कितने ही मासाहारी शुद्ध शाकाहारी बन कर तारणहार के प्रशसक बन गये थे। कितने ही लोगो ने शराब पीना छोड दिया था और कई ऐसे थे जो गुरुशरण में आने के पहले जुआ खेलते थे और विनाश के पथ पर चलते थे, वे सभल गये थे। उन्होने जुआ छोड दिया था। यह व्यक्तित्व साधारण नही था, परन्तु उसे असाधारण भी नही कहा जा सकता। यह जीवन सहज और सरल था। इस जीवन की सजावट पूज्य आचार्यदेव श्रीमद्

विजय वल्लभ सूरीश्वरजी के करकमलो द्वारा हुई थी। प्रभाव का यही कारण था।

पूज्य पन्यास श्री को चिंतातुर देखकर श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास चिंतित हो गये। चरणारविंद मे नमन करने के पश्चात् भक्तिभाव से उन्होने पूछा—गुरुदेव ! आज उदास दिखाई देते हो। क्या कारण है, पूज्यवर ?

पन्यास श्री क्षण भर मौन रहे, फिर शान्त भाव से बोले—भाग्यशाली ! गुजरावाला से पूज्य गुरुदेव श्रीमद्विजयवल्लभ-सूरीश्वरजी महाराज का पत्र आया है। उसे पढकर विचार मे पड गया हू।

'पत्र मे ऐसी क्या बात है, पूज्य गुरुदेव !' श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास भाई ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

पन्यासजी महाराज कुछ रुके, फिर पूज्य गुरुदेव का पत्र पढने लगे।

"तुम्हारे गुरुबंधु उपाध्यायजी सोहनविजयजी ने अथक परिश्रम करके पजाब श्री सघ के अपूर्व सहयोग से श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल, गुजरावाला के लिए ६८ हजार रुपये एकत्रित किये हैं। ३२ हजार की रकम और चाहिए। एक लाख की रकम बिना गुरुकुल कैसे स्थापित होगा।"*

पूज्य पन्यासश्री ने जब यह पत्र पढा, तब उनकी आँखो से अश्रुधारा वहने लगी। उन्होने बार-बार उस पत्र को श्रद्धाभाव से मस्तक पर लगाया। पन्यास श्री पूज्य गुरुदेव के पत्रो को वन्दना करके पढते थे। कितनी श्रद्धा-भक्ति पूज्य गुरुदेव के प्रति थी ? इस अनुकरणीय भक्तिभाव को देखकर महाकवि तुलसी कृत राम-

---

* युगवीर आचार्य—द्वितीय भाग (गुजराती) लेखक फूलचन्द हरिचन्द दोशी, पृ० १४ से सामार उद्धृत।

चरित मानस के भरतजी का स्मरण हो आ
हेतु चित्रकूट जा रहे हैं। मार्ग मे वे उन समस्
करते हैं जहाँ राम ने विश्राम किया था। य
जिन्होने राम की सेवा की थी, उनको राम
हैं। वे वस्तुएँ भी अतिशय प्रिय लगती हैं, ज
हैं। निर्मल भक्ति का यह सहज लक्षण है।

पन्यास श्री की गुरुदेव के प्रति ऐसी ही भ

पूज्य पन्यास श्री के अश्रु भरे नेत्रो को देख
दास ठाकुरदास क्षण भर चुप रहे, फिर उनके म
गई। मुख पर तेज दमकने लगा। नेत्र चमकने
हुआ। यह जाग्रति थी। शुभ काय करने के पह
मे जाग्रति का शुभ लक्षण प्रकट होता है और अ
के पहले विकृति की काली छाया मुख पर छा ज
मनोविज्ञान के पारखी यह बताते है कि शुभ का
अन्तमन मे आनन्दोत्साह छा जाता है। इसके विपर
करने वाले मनुष्य की दशा होती है। उसकी मुखाकृ
जाती है। इसे राक्षसी छाया कहते हैं।

श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास की प्रसन्नता छिप
पन्याम जी महाराज ने समझ लिया कि यह मगलने
सृजित की है। महापुरुषो की अभिलाषा इसी तरह
पूर्ण होती है।

श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास का मौन भग ह
मुखरित हुए। अत्यन्त विनम्र वाणी मे उन्होने पन्यास
को कहा—"पूज्य गुरुदेव! आप चिंता न करें। आप
चरणों मे उपस्थित है। मैं रु० ३२०००) की रक

लिए भेंट करता हूँ। आप परम पूज्य आचार्य देव को गुजरावाला तार द्वारा यह सूचना भेज दीजिए।"

यह कहते ही विट्ठलदास भाई ने पन्यास श्री के चरण कमलों में नमन किया। पन्यास श्री की आंखों से गंगा-जमुना धाराएँ बहने लगी। पवित्र अश्रुजल से श्रेष्ठि भीगने लगे। उनके नेत्रों में भी अश्रुमोती टपकने लगे। यह दृश्य अद्भुत था। प्रेम के बादल बरस चुके थे। मानस गगन स्वच्छ हो चुका था और आनन्द का आदित्य चमकने लगा था। उस निर्मल और प्रेमालु वातावरण में श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास ने पन्यास जी महाराज की स्तुति में कहा—"पूज्य गुरुदेव! आप जैसे सद्गुरु को पाकर मेरा जीवन सफल हो गया है। आपकी कृपाछाया मुझ पर सदा रहे जिससे मैं अनेकानेक शुभ कार्य करता रहूँ।"

पूज्य पन्यासजी महाराज ने प्रेम विह्वल श्रेष्ठि को आशीर्वाद दिया। हर्षविभोर श्रेष्ठि वहा से विदा हुए। उनके मन में आनन्द के असंख्य दीप प्रज्वलित थे। उत्तम दानी का यही लक्षण है। शास्त्र कथन है

आनन्दाश्रूणि रोमांचो बहुमान प्रिय वच।
तथानुमोदना पात्रे दानभूषण पंचकम्॥

[दान देते समय आनन्द से आंसू उमड आवें, पात्र को देखते ही रोमाञ्च हो उठे, पात्र का बहुमान और प्रिय वचन कहकर आदर किया जाय तथा दान के योग्य पात्र की अनुमोदना की जाय ताकि दूसरो को भी उसे देने की प्रेरणा मिले—ये दान के पाँच भूषण हैं।]

पूज्य आचार्यदेव को जब श्रेष्ठि विट्ठल भाई ठाकुर भाई के दान की सूचना मिली, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। गुजरावाला में हर्ष छा गया। पूज्य आचार्यदेव ने व्याख्या मे कहा "पन्यासजी महाराज ने बम्बई मे विलक्षण कार्य किया है। इसकी जितनी मरा-

हना की जाय, उतनी कम है। श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास भाई ने यह दान देकर गुरुभक्ति और विद्या प्रेम का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।"

सभी श्रोतागण पन्यास श्री ललित विजयजी महाराज तथा श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास की मुक्तकठ से प्रशसा करने लगे। फलस्वरूप सवत् १६८१ माघ शुक्ला पचमी के शुभ-दिन श्री सघ ने गुजरावाला नगर मे श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल की स्थापना की।

परम पूज्य आचायदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी का चातुर्मास सवत् १६८२ मे गुजरावाला मे हुआ। चातुर्मास के अन्तर्गत स्वागत समारोह का भव्य आयोजन किया गया। श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास विशेष आमन्त्रित किये गये। उस मगल प्रसग पर पूज्य पन्यास श्री ललित विजयजी महाराज को गुरुभक्त की पदवी प्रदान की गई तथा श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास दानवीर उपाधि से अलकृत किये गये। उस स्वर्ण अवसर पर पूज्य आचार्यदेव ने जो उद्गार प्रकट किये, वे प्रेरणा-स्रोत है

पन्यासजी श्री ललित विजयजी विले पारले, बम्बई मे अस्वस्थ हैं। मेरे पत्र को पढते ही उन्होने दानवीर श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास को इस दान के लिए सत्प्रेरणा दी। मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई, ऐसे गुरु-भक्त शिष्य-रत्न को पाकर मैं गौरवान्वित हुआ हूँ। दानवीर श्रेष्ठि की सेवा-भक्ति स्वर्णाक्षरो मे अकित करने योग्य है।

पूज्य आचार्यदेव ने ज्योही व्याख्यान समाप्त किया, सभासद हर्षनाद करने लगे। जय-जयकार की मगलकारी ध्वनि सवत्र गू जने लगी। उस प्रसग पर दानवीर श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास, बम्बई से सुप्रसिद्ध गायक प्राणसुख भाई को लेकर आए थे। समारोह के दिन मध्याह्न के समय गुजरावाला के श्री पार्श्वनाथ जिनालय मे सप्ताह भर पूजोत्सव हुए। पूज्य गुरुदेव रचित ब्रह्मचर्य पूजा, अष्ट-

जयों की मधुर

ीर के ममव-
ि वदन कर
िनय पूछा तो
ा के मणिहार
न ममय मे
काल प्राप्त

णिहार की
ान हुआ
ार नी।
ाम ग्रहण
ाप्त कर
के लिये
ा करते
प्रासुक

ाय जीवन
हावीर-नगरी
ा से

११

स्नेहांजलि

[उपाध्याय श्री सोहनविजयजी महाराज आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के महान् शिष्य रत्न थे। उन्होंने अन्त समय तक गुरुदेव की सेवा की। पूज्य गुरुदेव की इच्छा थी कि गुजरावाला नगर मे एक गुरुकुल स्थापित हो, जिसके लिए उन्होंने दिन-रात एक करके पजाव श्री सघ को प्रेरित किया फलस्वरूप ६८ हजार की रकम एकत्रित हो गई थी। शेष धन राशि ३२ हजार, उपाध्याय श्री ललित विजयजी महाराज के सदुपदेश से उनके अनन्य भक्त श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास, बम्बई निवासी ने दी थी। परन्तु जब इस धनराशि का समाचार गुजरा-वाला पहुँचा, उपाध्याय श्री सोहन विजयजी का प्राण-हस स्वर्ग मे उड चुका था। उपाध्याय श्री सोहनविजयजी के अतिम उद्गार थे "मैं उस दिन को धन्य मानूँगा जिस दिन गुरुदेव की प्रत्येक इच्छा पूर्ण होगी। इच्छा पूर्ण करने का प्रथम कर्त्तव्य हम आचार्य श्री के शिष्यों का है। मैंने अपने आपको अर्पण कर दिया है कि जब तक मेरे तन मे खून की एक बूँद भी रहेगी, तब तक मैं प्रयत्न मे ही लगा रहूँगा। तुम मेरे शरीर की बात कहते हो पर कल किसने देखा है ? शरीर का क्या भरोसा ? मन मे अनेक बाते सोच रखी हैं। सारे पजाव मे गुरुदेव की इच्छानुसार विद्या का प्रचार करना है। पजाव श्री सघ का सगठन उत्तम करना है और उस सगठन

ध्यान विमल करता अघ नासे, मिथ्या मोह भुजग रे। भवि० ।३
दीप दरस से तस्कर नासे, आतम तिमिर उतग।
तिम जिन पूजत मिले चित्त दीपक, जरत है समर पतग रे।
भवि० ।४

दोहा

द्रव्य दीपक विभावरी, तिमिर करे सब दूर।
भाव दीप जिन भक्ति से, प्रगटे केवल सूर। १।

उस स्वर्ण अवसर पर पन्यास श्री ललित विजयजी महाराज गजरावाला मे होते, तो और ही आनन्द रहता।

गुजरावाला का उत्सव समाप्त हुआ। पूज्य आचार्यदेव ने वहाँ से विहार किया। दानवीर श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास भी भक्तिरस मे भीगकर बम्बई पधारे।

जब गुजरावाला के स्वागत समारोह और पूजोत्सव के समाचार पन्यासश्री को विले पारले मे मिले, तब वे भाव-विभोर हो गये। उनके मुखारविंद से ये भावोद्‌गार प्रकट हुए

पजाब श्री सघ ने मुझे गुरुभक्त की पदवी दी है, यह सब मेरे गुरुदेव की कृपा का फल है। यही कामना है कि मैं स्वस्थ होकर गुरु-चरणो मे रहूँ और जन्म-जन्मान्तर उनकी सेवा करूँ। शासन देव मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें।

इतना कहते ही वे मौन हो गये। फिर उन्होने भूमि पर मस्तक नवाया। यह पूज्य गुरुदेव के चरण-कमलो मे श्रद्धापूर्वक नमन था। जब उन्होने शीश ऊपर उठाया, तब भूमि प्रेमाश्रु से भीग गई थी। इस प्रकार पूज्य पन्यासश्री ने अश्रुगगा जल से गुरु-चरणो का भाव-भक्ति पूर्ण अभिषेक किया।

कर रहा था। प्रिय बन्धु आये, हसते-हसते मेरे सामने आकर खड़े हुए। मैंने पूछा "भाई तुम कौन हो ? कहां से आए ?"

आपने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "मैं पंजाब से आया हूँ।" पहले प्रश्न का कि तुम कौन हो, कोई उत्तर नहीं दिया। मेरे प्यारे बन्धु मेरे हृदय मानस के हंस, भावी काल के मुनिसिंह ने शान्ति-पूर्वक मेरे सामने बैठकर अथ से इति तक (अलिफ से ये तक) अपनी सारी आत्मकथा कह सुनाई और कहा, "मैं जम्बू (काश्मीर) का रहने वाला ओसवाल का लड़का हूँ, और मेरा नाम वसंतामल है।" उस समय उस नरवीर की अकिंचनता को देखकर परमपूज्य श्री हंसविजय जी महाराज और मैं आश्चर्य चकित होते थे, क्योंकि उनका रहनसहन बिल्कुल ही सादा था। तन पर एक साधारण मलमल का कुर्ता, सिर पर दो पैसे की युक्त प्रान्त की टोपी और कमर में एक धोती थी। हम दोनों बन्धु आनन्द में दिन गुजारने लगे।

इसके एक दो दिन बाद ही आचार्य महाराज श्री विजय-वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का कृपा-पत्र आया, जिसमें लिखा था कि "ललित विजय ! योग्य सुखसाता अनुवंदना के साथ मालूम रहे कि इस व्यक्ति (वसंतामल) को तेरे पास भेजा है। इसको अपने नाम की दीक्षा देकर अपने साथ रखना पढाना, लिखाना और स्नेह से रखना। यह आगे चलकर पंजाब के लिए उपयोगी होगा।" मैंने उस पत्र को शिरोधार्य किया।

कुछ ही दिनों में वसंतामल ने मेरे पास जीव विचार, नवतत्त्व वगैरह कण्ठस्थ कर लिया। प्रतिक्रमण शुद्ध करना आरम्भ कर दिया। श्री हंसविजय जी महाराज साहब के साथ हमने वहां से विहार किया और मांडल आये। पूज्य श्री हंसविजय जी महाराज साहब ने श्री संघ को वसंतामल की दीक्षा की बात सुनाई। संघ का मन मयूर की तरह नाच उठा। उन्होंने

द्वारा पजाब मे रहने वाले प्रत्येक जैनी को उन्नत, गुरुभक्त और *शासनप्रेमी बनाना है। देखू तो यह शरीर कब तक साथ देता है।"**
शरीर ने साथ नही दिया और सवत् १६८२, मार्गशीर्ष वदि १४ के दिन, दुपहर के साढे ग्यारह बजे पूज्य गुरुदेव की शीतल शरण मे गुजरावाला मे उनका देहावसान हो गया। अन्तिम समय मे अरिहत-अरिहत के पवित्र शब्द मुखारविंद से उच्चरित होते रहे। उनका पुद्गलिक शरीर नष्ट हुआ परन्तु उनका यश शरीर अमर है। वे गुरुभक्ति का अमर उदाहरण छोडकर गये हैं जो सतत प्रेरणा देता रहेगा। उपाध्याय श्री ललित विजयजी महाराज ने उस समय *उनको स्नेहाजलि अर्पित की थी जिसे पढकर सद्भाव जाग्रत होते हैं* और जीवन सत्पथगामी बनता है। अत स्नेहाजलि को उनके शब्दो मे यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। साथ ही यह पत्र परमपूज्य ललित विजयजी महाराज के कार्यकलापो का दर्पण रूप है।]

मेरे प्रिय बन्धु! उपाध्याय श्री सोहन विजयजी स्वभावत बडे विनीत एव भद्रिक थे, इसी वास्ते पूर्व सम्प्रदाय त्यागने के बाद भी उनको दो बार फिर उनके प्रतिवन्ध मे फसना पडा। जब उनको पूर्णरूप से यह मालूम हो गया कि "नहि सत्यात्परो धर्मो, नानृतात्पातक परम्। नहि सत्याद् पर ज्ञान, तस्मात् सत्य समाचरेत्।" तब उन्होने आकर पूज्यपाद आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी की शरण ली। गुरु महाराज ने यह समझ कर कि शायद इनका मन फिर से परिवर्तित न हो जाय, उन्हे मेरे पास भेज दिया। मैं उस वक्त गुजरात देशान्तर्गत भोयजी तीर्थ पर परम पूज्य गुरु श्री हसविजयजी महाराज के साथ तारन-तरन जहाज प्रभु मल्लिनाथ स्वामी की सेवा मे रहकर ज्ञानाभ्यास

---

* आदर्श जीवन—पृष्ठ २९९

आदेश दिया । दीक्षा का मुहूर्त परम पूज्य परोपकारी श्री गुरुदेव ने पजाब से ही भेज दिया था, यद्यपि दीक्षा लेने मे दिन बहुत कम रह गये थे तो भी दशोढा के नर-नारियो ने खूब लाभ लिया । जुलूस निकाले, बाजे बजाये, भक्ति की, जिन शासन की उन्नति मे किसी प्रकार की खामी न रखी । दीक्षा बडे समारोह मे हुई । मुनिराज का नाम गुरु महाराज के आदेशानुसार मुनिश्री सोहनविजय जी रखा गया । प्रस्तुत मुनि को दीक्षा श्री गुरुदेव के नाम से ही दी गई क्योकि श्री गुरुदेव का नाम लब्धि-सम्पन्न है ।

कुछ दिन रह कर हम पु० श्री हंसविजयजी महाराज साहब की सेवा मे आये । इस आनन्द-जनक घटना मे एक घटना लिखते हुए कुछ हृदय मे पछतावा होता है, वह थी मेरी अज्ञानजन्य मूर्खता । दर-असल मे बात यह थी कि श्री हसविजय जी महाराज के परम विनीत शिष्य-रत्न श्री सपतविजय जी महाराज ने मुझे आदेश फरमाया कि हम भगवतीजी का योग समाप्त करें, वहाँ तुम श्री हसविजयजी महाराज के पास रहो, जिससे उनको आहार, विहार, प्रतिक्रमणादि मे सुविधा रहेगी । उस समय श्री हसविजयजी महाराज के पास एक छोटा साधु मुनि दुर्लभविजय था । मेरा उस वक्त उन परोपकारी के पास रहना बहुत उपयोगी था, मगर बेसमझी से हम दोनो गुरु-भाइयो ने यह विचार कर रखा था कि अपने म्हेसाणा की सस्कृत पाठशाला मे जाकर सस्कृत का अध्ययन करना ।

हालाकि मैंने पजाब मे ही परमोपकारी श्री गुरुदेव महाराज के पास लगभग समग्र व्याकरण पढ लिया था । मालेर-कोटला रियासत मे पडित करमचन्दजी आदि अनेक विद्वानो के पास उसकी पुनरावृत्ति भी कर ली थी, मगर म्हेसाणा पाठशाला मे जाकर साहित्य के अन्य ग्रन्थो की पढाई करने का और नवीन मुनि को व्याकरण पढाने का विचार था । म्हेसाणा की हवा उन दिनो

श्री हसविजयजी महाराज साहव की सेवा मे आग्रहपूर्वक विनती की कि आप वसतामल को यहाँ ही दीक्षा दें। मगर वात यह थी कि माण्डल के पास दशाढा गाँव में मेरे परमोपकारी चरित्रदाता गुरुदेव से दूसरे नम्वर के उपकारी मुनि महाराज श्री शुभविजय जी तपस्वी जी विराजमान थे जिन्होने पजाव से गुजरात आने के वाद कई वर्षों तक शास्त्र सिद्धान्तो का मुझे अध्ययन कराया था और प्रमाणनय-तत्त्वालोकालकार, लोकतत्त्वनिर्णय, तीन भाष्य, गुणस्थानक्रमारोह, तर्कसग्रह, षड्दर्शन-समुच्चय, सम्यक्त्वसप्तति आदि अनेक मूल ग्रथ कण्ठस्थ कराये थे।

उनके पास वन्दन करने के लिए मैं पहुँचा। वे महात्मा स्वभावत वडे मितभाषी एव नि स्पृही थे। उन्होने स्वल्प अक्षरो मे मुझे फरमाया कि ललितविजय! श्री हसविजयजी महाराज की अगर इच्छा हो तो इस मुमुक्षु को खुशी से माडल मे ही दीक्षा दो, कोई हर्ज नही। मगर हमारी हार्दिक भावना यह है कि हम चारित्र ग्रहण के वाद अभी ही अपनी जन्म-भूमि मे आये हैं, इसलिए अगर यह दीक्षा महोत्सव यहाँ हो जाय तो वहुत श्रेयस्कर है। माडल मे वस्ती ज्यादा है। उन लोगो को ऐसे चान्स (मौके) वहुत वार मिलते रहते हैं। दशाढा गाव छोटा है। इस गाँव के सघ को यह प्रसग स्वाभाविक ही मिल गया है। यह काम इसी सघ को दिया जाय तो अत्युत्तम है। मैंने हाथ जोडकर उपकारी के चरणो मे मस्तक नमाया और अर्ज की, "प्रभो! मैं श्री हसविजयजी महाराज साहव को पूछकर आपकी सेवा मे निवेदन करूँगा। मुझे पूर्ण आशा है कि वे वडे दीर्घदर्शी एव विचारशील हैं। मुझ पर उनकी कृपा भी असीम है। वे अवश्य इस वात से रजामद होगे। वैसा ही हुआ। श्री हस-विजयजी महाराज साहव की आज्ञा पाकर दसाढे के सघ को जो इस कार्य के लिए वहुत प्रार्थना कर रहा था, दीक्षा महोत्सव के लिए

मारवाड मे गुरु महाराज सेवा मे उपस्थित हुआ और गुरुदेव के प्रारभ किये हुए शिक्षा प्रचार मे जो कुछ बन सका, कुछ अश मे उनकी आज्ञा का पालन करता रहा। श्री गुरुदेव के साथ मैं भी पजाब गया। अम्बाला और होशियारपुर दो वर्ष सेवा मे रह कर वहाँ से श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार मैं बबई पहुचा। पजाब से रवाना होते समय मेरे साथ प्रभाविजयजी थे। बम्बई के चातुर्मास मे प० उमगविजय जी मुनि, नरेन्द्रविजय जी, श्री अमरविजय जी आदि ६ साधु थे और सातवा मैं था। इस समय का बम्बई जाना श्री महावीर जैन विद्यालय की बिल्डिंग को लेकर था।

श्री महावीर जैन विद्यालय की स्थापना सम्वत् १६७१ मे हो गई थी। उसके ट्रस्टी लोगो ने श्री गुरु महाराज को लिखा था कि केवल किराये मे हमारे १८०००) रुपये सालाना खर्च हो रहे हैं सो कृपा करके किसी ऐसे साधु को भेजिये जो इस काय मे हमारे सहायक बनें। उनकी विनती पर ख्याल कर श्री गुरुदेव ने हमको बम्बई भेजा। उसका तात्कालिक परिणाम जो कुछ हुआ, वह श्री महावीर जैन विद्यालय की रिपोर्ट देखने से पता लगता है।

इस चौमासे के लिए जब हम बम्बई जा रहे थे तो पहली जयन्ती विले पार्ले मे हुई और बम्बई से आये हुए सब सधर्मी भाइयो की भक्ति श्रीयुत् मोतीचन्द गिरधर कापडिया सोलीसिटर ने की उस समय लगभग २७५००) की विद्यालय को प्राप्ति हुई। दूसरे चौमासे के प्रारभ मे दूसरी जयन्ती अधेरी मे सेठ सेवतीलाल नगीनदास के बगले मे हुई, जिसमे लगभग २७००' आदमियो की भक्ति का उन्होने लिया और ५०००) महावीर जैन विद्यालय को भी दिये। सेठ कीकाभाई पहिले कुछ रकम दे चुके थे और फिर भी कुछ दी। यह सामान्य बातो का दिग्दर्शन है, यो तो श्री महावीर जैन विद्या-

ठीक न थी, पाटण के पास चाणसभा गाँव मे एक वृद्ध साधु विराजते थे, जिनका नाम पन्याम उमेदविजयजी था। ये साधु बडे सरल स्वभावी, आत्मार्थी और सज्जन थे। उन्होने चाणसभा मे रह कर नवीन साधु को वडी दीक्षा के योग कराने का वहुत आग्रह किया, मगर हमे तो पूज्य श्री हसविजय जी महाराज साहव के चरणो मे रह कर शान्ति प्राप्त करने की लय लगी थी। हम पीछे काठियावाड को लौट गये और हसविजय जी महाराज साहव की सेवा मे सिद्ध क्षेत्र पालीताणा मे जा पहुँचे। सवत् १९६१ का चौमासा भी वही किया।

चौमासा समाप्त होते ही हम पाटण, डीसा, मढार, सिरोही, सादडी, पाली, ब्यावर, अजमेर, दिल्ली, वगैरह होते हुए पजाव पहुचे। चौमासा जीरा, जिला फिरोजपुर में गुरु महाराज की सेवा में किया। उस चौमासे के वाद मैं दो साधुओ के साथ वीकानेर आया और उपाध्यायजी महाराज गुर महाराज की सेवा मे रहे। वह चौमासा वीकानेर मे ही रहा। वहा से लौटकर पजाव गया और पजाव से चलकर जयपुर आकर गुरु महाराज से मिला। जयपुर से साथ होकर गुजरात मे गुरु महाराज के साथ ही रहा। गुर महाराज के दो चौमासे वम्वई मे श्री महावीर जैन विद्यालय की स्थापना के लिए हुए। मेरे वो दो चौमासे बीजापुर और म्हेसाणा मे हुए। म्हेसाणे का चौमासा उठने पर कुछ साधुओ के साथ श्री सिद्धाचलजी की यात्रा करके मैं सूरत मे गुरु महाराज की सेवा मे उपस्थित हुआ। उस समय मुझे ववई जाने की आज्ञा मिलने पर मैं वहा पहुचा। उस समय मेरे साथ मुनि श्री उमगविजयजी आदि कई साधु थे।

वम्वई से लाटने के वाद पालीताणा मे आकर गुरु महाराज के दर्शनो का लाभ मिला, साथ ही इस काठियावाड की मुसाफिरी मे मुझे भी उपाध्याय जी श्री सोहनविजय जी महाराज से मिलने का फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। काठियावाड और गुजरात मे कुछ वप रह कर

मारवाड मे गुरु महाराज सेवा मे उपस्थित हुआ और गुरुदेव के प्रारभ किये हुए शिक्षा प्रचार मे जो कुछ वन सका, कुछ अश मे उनकी आज्ञा का पालन करता रहा। श्री गुरुदेव के साथ मैं भी पजाव गया। अम्वाला और होशियारपुर दो वर्ष सेवा मे रह कर वहाँ से श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार मैं वम्बई पहुचा। पजाव से रवाना होते समय मेरे साथ प्रभाविजयजी थे। वम्वई के चातुर्मास मे प० उमगविजय जी मुनि, नरेन्द्रविजय जी, श्री अमरविजय जी आदि ६ साधु थे और सातवा मैं था। इस समय का वम्वई जाना श्री महावीर जैन विद्यालय की विल्डिग को लेकर था।

श्री महावीर जैन विद्यालय की स्थापना सम्वत् १९७१ मे हो गई थी। उसके ट्रस्टी लोगो ने श्री गुरु महाराज को लिखा था कि केवल किराये मे हमारे १८०००) रुपये सालाना खर्च हो रहे हैं सो कृपा करके किसी ऐसे साधु को भेजिये जो इस काय मे हमारे सहायक वन। उनकी विनती पर ख्याल कर श्री गुरुदेव ने हमको वम्वई भेजा। उसका तात्कालिक परिणाम जो कुछ हुआ, वह श्री महावीर जैन विद्यालय की रिपोट देखने से पता लगता है।

इस चौमासे के लिए जब हम वम्वई जा रहे थे तो पहली जयन्ती विले पारले मे हुई और वम्वई से आये हुए सव सधर्मी भाइयो की भक्ति श्रीयुत् मोतीचन्द गिरधर कापडिया सोलीसिटर ने की उस समय लगभग २७५००) की विद्यालय को प्राप्ति हुई। दूसरे चौमासे के प्रारभ मे दूसरी जयन्ती अन्धेरी मे सेठ सेवतीलाल नगीनदास के वगले मे हुई, जिसमे लगभग २७००' आदमियो की भक्ति का उन्होने लिया और ५०००) महावीर जैन विद्यालय को भी दिये। सेठ कीकाभाई पहिले कुछ रकम दे चुके थे और फिर भी कुछ दी। यह सामान्य वातो का दिग्दशन है, यो तो श्री महावीर जैन विद्या-

लय की विल्डिंग के लिए लगभग दो लाख रुपये उन दोनो चौमासो मे विद्यालय को मिले।

विद्यालय का प्रवेश मुहूर्त भी हमारे समक्ष मे भावनगर के दीवान साहिब सर प्रभाशकर पटनी के हाथो से हुआ था।

इन दोनो चौमासो मे १ दानवीर सेठ विट्ठलदास ठाकुरदास २ दानवीर सेठ सर कीकाभाई प्रेमचन्द ३ बाबूसाहब श्रीयुत् जीवनलाल पन्नालालजी ४ दानवीर सेठ देवकरण मूलजी आदि श्रावको ने अच्छा लाभ उठाया।

इन दो चौमासा मे श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल पजाब को लगभग एक लाख रुपये की सहायता मिली। इसमे से ५१ हजार तो सिर्फ दानवीर सेठ विट्ठलदास ठाकुरदास ने ही दिये थे।

श्री आत्मानन्द जैन हाईस्कूल अम्बाला (पजाब) की विल्डिंग के लिए अठारह हजार रुपये उनको मिले। इन सब कार्यो मे मुझे मेरे परमोपकारी आचायदेव तथा परमस्नेही उपाध्याय जी महाराज प्रेरक थे। इस प्रकार अनेक ज्ञान, दर्शन और चारित्र के कार्यों को यथाशक्ति कर कराकर हमने गुजरात की ओर विहार किया। १२ दिन तक प्रेमोद्यान, भाईखला ठहर कर हम गुजरात की तरफ रवाना हुए।

पूज्यपाद परमोपकारी आचार्य भगवान श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज लाहौर से अनेक ग्राम और नगरो मे उपदेश देते हुए गुजरावाला पधारे। उपाध्यायजी श्री सोहनविजयजी पाँच महीनों से खासी की बीमारी से लाचार थे। गुजरावाला आकर पजाब महासभा के सगठन को उन्होने खूब मजबूत किया और गुरुकुल के लिए उन्होने इतना परिश्रम किया कि उनकी छाती दुखने लग गई। श्री नवपदजी की आराधना के निमित्त उन्होने बहुत दिनो

तक मौनावलबी होकर आयविल की तपश्चर्या की। तप और जाप सदा कल्याण के हेतु है, मगर उनके आयु की समाप्ति होने आई थी। उसमे शारीरिक परिश्रम आदि निमित्त मिल गए। उपाध्यायजी की व्याधि असाध्य हो गई। अब एक ही वात वाकी थी। मैं यह चाहता था कि इनकी हार्दिक इच्छाएँ पूर्ण हो जायँ ताकि उनकी आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले।

प्रेमोद्यान भाईखला से चलकर जव हम माहिम पहुँचे, श्रीयुत् मकनजी, वार एट लॉ ने खार मे अपने वगले में पधारने की विनती की। हम वहाँ पहुचे। वम्वई के हजारो श्रावक-श्राविकायें वहाँ एकत्रित हुए थे। पूजा और स्वामिवत्सल का ठाठ हो रहा था, मगर मेरी आत्मा उपाध्याय जी की चिंता में लीन थी।

उस दिन सेठ विट्ठलदास ठाकुरदास जो मेरे जन्मान्तर के प्रिय स्नेही थे, उनसे यह निश्चय हो रहा था कि आप गुजरावाला उपाध्याय जी महाराज को तार करा दें कि आपके निर्धारित कार्य में मैं आजन्म सहायक रहूँगा और गुरुकुल पजाव को किसी तरह की हानि नही पहुँचने दूँगा। इस सम्वन्ध में आप विल्कुल निश्चित रहे। यह सव इसलिये करना पडा था कि शास्त्रो में फरमाया है कि —पहले ज्ञान और पीछे अहिंसा (प्रथम जानाति, पश्चात्प्रयतते) पजाव में शिक्षा वहुत कम थी। उपाध्याय जी महाराज अशिक्षा के भूत को भगाने के लिए देश की वलिदेवी पर वलिदान होने को सुसज्जित है।

उनके मन में यह था कि इस देश के घोर अज्ञान को हटाने के लिए मेरे वलिदान की खास आवश्यकता है। ये गुरु तेगवहादुर के समान वहादुर थे। "वासासि जीर्णानि यथा विहाय' के सिद्धा त से उनकी आत्मा को मरने का भय विल्कुल न था।

एक बात और भी ध्यान मे रखने की है कि जब मैं होशियारपुर (पजाब) से बम्बई की ओर रवाना हो रहा था, तब जण्डियाला-गुरु से श्री उपाध्याय जी महाराज का आग्रहपूर्ण फरमान था "मेरे मिले बगैर आप जालधर से आगे न बढें।" उनकी आज्ञा को मान देकर मैं जालधर मे ठहर गया। श्री उपाध्याय जी जण्डियाला से विहार कर जालधर आ पहुँचे। हम दोनो भाइयो ने दो दिन वहाँ रह कर परस्पर के प्रेमतरु का खूब सिंचन किया। मेरे विहार के वक्त उपाध्याय जी जालधर की छावनी तक साथ आये। यद्यपि विधाता ने उनका और मेरा शरीर भिन्न बना दिया था किन्तु आत्मा एक थी।

"तुमको हमारी चाह हो, हमको तुम्हारी चाह हो।' यह हमारी मानसिक इच्छा थी। इसीलिए मुझसे मिलना चाहते थे, परन्तु टूटी की बूटी नहीं है।

वे (उपाध्याय जी श्री सोहनविजय जी महाराज) गुजरावाला मे बीमार थे, मैं सार से विहार करके शान्ताक्रुज आया था। दानवीर सेठ विठ्ठलदास ठाकुरदास जी कल शान्ताक्रुज आने का वादा कर गये थे, आए। आते हुए उस सज्जन ने अपने घर के टेलीफोन पर एक आदमी बैठा दिया था और कह दिया था कि शान्ताक्रुज से मैं जो कुछ टेलीफोन पर कहूँ, उस समाचार को अर्जेण्ट तार द्वारा गुजरावाला भेज दें।

शान्ताक्रुज मुझसे मिलने के बाद यह निश्चय हुआ कि उपाध्याय जी को इस आशय का तार कराया जाय कि आप बिल्कुल बेफिक्र रहे, मैं आजन्म पजाब गुरुकुल का निर्वाह करूँगा, किन्तु होनहार होकर ही रहती है। सेठ जिस आदमी को टेलीफोन पर बैठा गए थे, वह कार्यवश कही चला गया। इधर समाचार कहलाने के वास्ते शान्ताक्रुज मे टेलीफोन की तलाश की गई। जमनादास

मोरारजी जे० पी० के बगले मे हम ठहरे हुए थे, उनका टेलीफोन बिगडा पडा था, इसमे भी कुछ समय व्यतीत हो गया। आसपास के बगलो मे तलाश करके सेठजी ने समाचार भेजा, मगर उस वक्त तक मेरे प्यारे धमबन्धु उपाध्याय जी महाराज का हस इस पजर को छोडकर परलोकवासी हो गया था।

रात भर उनकी खबर के इन्तजार मे मैं जलविहीन मीन की भाँति तडफा। सवेरे तार मिला जिसमे उनके अनिष्ट समाचार थे।

मैंने वहाँ विलापारला की ओर विहार किया मगर उस समय मेरी दशा विचित्र थी। उसे मैं कहाँ तक वर्णित कर सकता हू। मैं पागल हो गया था, मुझे किसी बात की सुधबुध न रह गई थी, मैं रो-रो कर यही कहता था—

प्रिय बन्धु—"जुदाई तेरी किसको मजूर है।
जमीन सख्त आसमान दूर है॥"

ए मेरे प्यारे! ए मेरी आँखो के तारे! मोहन प्यारे! तुम आज कहाँ हो?

विला पारला मे सेठ डाह्याभाई गेलाभाई नामक गुजरात के एक श्रावक रहते हैं। जिन्होने अस्सी हजार रुपये का एक मकान सेनीटोरियम के लिए खरीद रखा था, किन्तु कई वर्ष बीत जाने पर भी वे उसे इस काम में दे न सके थे। उन्होने प्राथना की कि यदि आप ८ दिन ठहरे तो यह अस्सी हजार का मकान लोकहित के लिए दे दूँ। उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर हम वहाँ ठहर गये। सेनीटोरियम का निश्चय हो गया। उस निमित्त का उत्सव भी शुरू हो गया। रोजाना पूजा पढाई जाने लगी। इसमे रोज कई हजार आदमी इकट्ठा होते थे। उस प्रसग पर सेठ डाह्याभाई गेलाभाई की ओर से सब लोगो को स्वामि वात्सल्य कराया जाता था। इस उत्सव महोत्सव मे मेरा दिल कुछ बदल गया।

यह शुभ कार्य ता २३-११-१९२५ को सम्पूर्ण हुआ। इस शुभ काम के समाप्त होने पर जब हम विहार की तैयारी करते थे, अधेरी से सेठ भोगीलाल लहरचन्द आये। उन्होने प्रार्थना की कि हमने लगभग २० हजार रुपया लगाकर सडक पर मकान तैयार कराया है। उसकी वास्तु-पूजा-क्रिया आपकी मौजूदगी मे करना चाहते हैं। मार्गशीर्ष शुद १० को हम वहाँ पहुँचे। बम्बई की जैन जनता खूब आई, पूजा पढाई गई। मौन एकादशी के पोसह उसी मकान मे हुए। वहाँ से हम सूरत-बडौदा की तरफ होते हुए अहमदाबाद आये।

अहमदाबाद के रहने वाले सेठ वाडीलाल साराभाई मुझ से मोहनलाल मोतीचन्द के बगले मे बम्बई मे मिले थे। उन्होने बडी हार्दिक इच्छा से यह कहा था कि मैं श्री महावीर जैन विद्यालय को एक लाख रुपया देना चाहता हूँ। उस वक्त उनकी अवस्था वृद्ध थी और शरीर शिथिल था।

जब हम अहमदाबाद पहुँचे तब मोतीचद गिरधरदास कापडिया सोलीसिटर पाटण मे नगीनदास करमचन्द के उद्यापन मे आए हुए थे। उनका पत्र हमे अहमदाबाद मे मिला, जिसमें उन्होने लिखा था कि मैं कल पाटण से बम्बई जा रहा हूँ, वहाँ कल एक बडे मुकदमे की पेशी मे हाजिर होना है, इसलिए मैं वाडीलाल सारा-भाई से नही मिल सकता। आप जरूर मिलें और उनकी लाख रुपये की रकम के लिए निश्चय करें।

पत्र मिलने पर हम वाडीलाल साराभाई को मिले। वे आमली पोल की धमशाला मे, जहाँ हम ठहरे हुए थे, आकर मिले और झवेरी भोगीलाल ताराचन्द लसणिया, वकील केशवलाल प्रेमचन्द मोदी बी ए, एल एल बी सेठ साराभाई मगनभाई मोदी, बी ए, आदि सज्जनो की मौजूदगी मे उन्होंने हमारे सामने श्री महावीर

जैन विद्यालय को एक लाख रुपये देने का निश्चय किया। वहाँ से हम पाटण गये और वहाँ अनेक मुनि महात्माओ के दर्शन हुए।

इस प्रकार स्थान परिवर्तन तथा ज्ञान-ध्यान के कार्यों मे लगे रहने के कारण उपाध्याय जी महाराज का दुःख कुछ हलका हो गया, फिर भी जब उनके स्वभाव की याद आती है और उनकी स्मृति आ खडी होती है, हृदय व्यग्र हो जाता है।

—आदर्शोपाध्याय–लेखक पडित हसराज जी
(पृष्ठ १८६ से २०४) से साभार उद्धृत।

[परमपूज्य उपाध्याय श्री ललित विजयजी महाराज के इस पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने परमपूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज द्वारा स्थापित सरस्वती मदिरो का अत्यन्त कुशलतापूर्वक लालन-पालन किया। फलस्वरूप वे वटवृक्ष की तरह बढ गए हैं जिनकी छाया तले समाज के हजारो विद्यार्थी शिक्षा सम्पन्न होकर उन्नति के शिखर पर पहुँचे है और पहुँच रहे है। समाज उनके अनन्त उपकारो को कदापि नही भूल सकता।

परम पूज्य उपाध्यायजी श्री सोहनविजय जी महाराज की अद्वितीय गुरुभक्ति और शिक्षा प्रेम का परिचय इस पत्र से मिलता है। उनके महान् शिष्य श्रेष्ठ जिनशासनरत्न आचार्यदेव श्रीमद् विजय सूरीश्वरजी महाराज पूज्य गुरुदेव के पावन चरण-चिह्नो पर चल कर समाजोत्थान एव धर्म के शुभ कार्य करके शासन की प्रभावना को बढा रहे हैं।]

१२

दो पत्र

[पूज्य उपाध्यायजी श्री सोहनविजय जी महाराज ने पूज्य उपाध्याय जी श्री ललितविजय जी को अनेक पत्र लिखे जिनमें दो को यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। इन पत्रों में पूज्य उपाध्याय श्री ललित विजय जी महाराज के विद्यानुराग, गुरुभक्ति और कर्त्तव्य-परायणता आदि सद्गुणों पर प्रकाश डाला गया है। ये पत्र 'आदर्शोपाध्याय' नामक पुस्तक से साभार उद्धृत हैं जिसके लेखक हैं श्री पडित हसराज जी।]

प्रथम-पत्र—

वदे वीरमानदम्।

गुजरावाला, सवत् १६८२,
कार्तिक वदि १०, शुक्रवार

धर्म बन्धु! लघु की वदना स्वीकार करियेगा। धन्य-धन्य है आपको, जो सूरीश्वरजी के वचनों का प्रतिपालन कर रहे हैं। बस यही गुण मैंने आपमे देखा। जैसी आप आचार्य भगवान् की आज्ञा पालन करते हैं, वैसी अगर मैं भी करूँ तो बस मेरा बेडा पार हो जाय। शासनदेव से यही प्रार्थना है कि मुझे भव-भव मे सूरीश्वरजी की सेवा नसीब हो जैसी कि आप कर रहे हैं। आप मे मैंने क्या देखा है, बस कह नही सकता क्योंकि मैं तो आपकी ही माला फेरता हूँ। आपने जो कार्य किया, वह दूसरो से नही होने वाला।

द्वितीय-पत्र—

गुजरावाला,
कार्तिक शुक्ला १५, मगलवार

सेवक की वदना। माला पहुँच गई। आज श्रीजी (पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी) के तेला है। कल को पारणा होगा। धर्म वन्धु! मेरा वडा ही पाप का उदय है जो कि श्रीजी की छत्रछाया मे रहते हुए भी कुछ भी भक्ति नही हो सकती। पाँच मास से खासी पीछे लगी हुई है आचार्य भगवान् की कृपा से दो दिन से कुछ कम है। सिद्धचक्रजी महाराज जी के प्रताप से आराम आ जावेगा। शरीर भी अव आगे जैसा नही रहा। आपकी कृपा से कुछ फिक्र नही। अच्छा तो मैं मनोगत अपने भावो को आपके प्रति जाहिर करता हूँ।

आप दयालु जो कुछ श्रीजी का हाथ वटा रहे है उसके वदले मेरे पास कोई शब्द नही जो आपकी सेवा मे लिखू। हा, इतना जरूर है कि जब आप याद आते है, आपका स्नेह याद आता है, उस समय दो आसू की वूदें तो जरूर गेरता हूँ। सच्चे गुरुभक्त है तो आप हैं। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि जो काय आपने किये है, वह दूसरा करने मे असमथ है। धन्य है आपको।

गुरुकुल के लिये भी आपने जो मदद पहुँचाई उसका वदला हैं है मेरी आत्मा। मैं उस रोज को धन्य मानू गा जिस दिन सूरीश्वरजी की सोलह आना इच्छा पूर्ण होगी। वह सोलह आना इच्छा पूर्ण करना सूरीश्वरजी के शिष्यो का प्रथम कर्त्तव्य है। मगर सव मे से आप ही सूरीश्वरजी की इच्छा को सम्पूर्ण करने मे समर्थ हैं। वाकी तो अल्ला-अल्ला, खैर सल्ला। लो अव मेरी सुनो। गुरुकुल के लिए हमे ऐसे नर पैदा करने होगे जो दस साल तक ६० नकद देकर साल मे एक दिन सार्धमिवच्छल कर देवें। ऐसे साधर्मिवत्सल करने

वाले ३६० हो जावे तो बस फिर अपने पौ बारह। अगर २ साल देने वाले भी ७००० हजार निकल जावे तो भी अच्छा है। मैंने तो अपने दिल मे धार लिया है कि देशान्तर मे फिरकर गुरुकुल का फंड जमा कराना, अगर मेरे खून के कतरे भी मांगेंगे तो भी देने को तैयार हूँ। मगर श्रीजी ने जो बूटा लगाया है उसका बड़ा भारी दरख्त बना देना। अगर जिन्दगी रही तो कुछ भक्ति कर लूंगा वरना भावि-भाव। प्रभा को सु सा तपस्वी जी को समुद्र सागरोपेन्द्र की वंदना। बाबाजी की सु सा श्रीजी की तरफ से सु सा

आपका

लघु सोहन

[पत्र-दर्पण मे पूज्य आचार्यदेव श्री विजय ललित सूरीश्वरजी महाराज की विलक्षण कार्यक्षमता और लोकप्रियता आदि सद्गुण स्पष्ट प्रतिबिम्बित हैं।]

१३

विद्या–दीप

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज ने सम्वत् १९७५ का बत्तीसवा चातुर्मास अहमदाबाद मे किया। वे गुजरात के पानसर, भोयणी, महेसाना, वीसनगर होते हुए पाटण पधारे। उस समय पाटण मे भयकर दुष्काल पडा था। लोग दु खी थे। गरीब लोग भूखो मरने लगे, पशुधन बिना चारा-पानी के नष्ट होने लगा। पूज्य आचार्यदेव तथा उनके परमपूज्य शिष्य-रत्न ललितविजय जी महाराज के उपदेश से अकाल सहायता कोष मे अच्छी रकम एकत्र हो गई। पूज्य आचायदेव के प्रेरक व्याख्यान के पश्चात् उनके शिष्यरत्न ने कहा

"भाग्यशालियो ! शासनपति भगवान् महावीर ने हमे अहिंसा और प्रेम का पावन सदेश दिया है। हमारे भाई-बहिन भूख से मर रहे हैं, पशुधन समाप्त हो रहा है। प्राणि सेवा की यह अनमोल घडी है। अत अपनी झोली खोल दो और पीडितो की तन-मन-धन से सेवा करो।"

सकट के समय पूज्य आचायदेव और उनके शिष्यरत्न के शुभागमन से पाटण के पीडितो को राहत मिली। जैनेतर भाई-बहिना मे इसका अच्छा प्रभाव पडा। जैनधर्म की प्रभावना बढी। उस अवसर पर पूज्य आचायदेव के साथ अन्य मुनिवृन्द ने भी अकाल पीडिता की सहायनार्थ प्रेरणा दी।

पूज्य आचार्यदेव ने अपने चार मुनिरत्न—मुनि श्री उमगविजय जी, तपस्वी श्री गुणविजय जी, मुनि श्री विद्याविजय जी, मुनि श्री विचारविजय जी–के साथ पाटण से विहार किया। जैन-जैनेतर जनता ने उनको भावभीनी विदाई दी। नेत्र अश्रुजल से भर गये। जय-जयकार के जयघोष से गगन-मडल गूज उठा। जनता न श्रद्धापूर्वक कहा अहा! देवदेत्त!

पूज्य आचायदेव ने पिडवाडा, नाणा और बेडा होते हुए बीजापुर के पास गता महावीरजी—हस्तीकुण्डी तीथ की ओर प्रस्थान किया। बीच मे लुटेरो ने लूट लिया। एक सिपाही जो उनके साथ रहा था, लुटेरो की तलवार से घायल होकर गिर पडा। वह बेहोश हो गया। पूज्य आचायदेव न अपनी तपणी का जल उस पर छिटका, फिर अपने कोमल कर से उसे छुआ। आश्चय! वह सचेत हो गया। उसने नेत्र खोले। सम्मुख खडे थे दयामूर्ति आचायदेव। कृतज्ञ भाव से उसके मुख से ये शब्द निकल पडे

'भगवान! आपने मुझे बचा लिया।'

'हम तुम्हारे ही हैं। किसी तरह की चिंता न करो।' पूज्य श्री ने कहा।

सिपाही ने प्रेम विभोर होकर कहा 'साक्षात् दयामूर्ति!'

पूज्य ने सिपाही को आश्वस्त करते हुए कोमल वाणी में कहा "मनुष्य दयालु तो हमेशा ही कहलाते हैं, परन्तु वास्तविक दया तो वही है जो समय पडने पर काम आवें।"

लगभग बारह बजे दुपहर को पूज्य श्री बीजापुर ग्राम में पहुँचे। वहाँ जब लोगो को इस दुघटना का पता लगा तो वे अतिशय दु खी हुए। वहाँ के श्रेष्ठि जवेरचन्द जी (बम्बई के श्रेष्ठि चन्दुलाल खुशालचन्द वाले) पूज्य गुरुदेव को देखकर इतने भाव-विह्वल हो

गये कि वे उनके चरणो मे लिपट गये। उनका गला भर आया। फिर गीले नेत्रो से सविनय बोले गुरुदेव आपकी यह दशा !

पूज्य आचार्यदेव मुस्कराये और बोले कर्म सब कुछ करा सकता है। उपाश्रय बताओ। वही सब वृत्तान्त सुनाएँगे।

उपाश्रय भवन मे पहुँचकर आचार्य श्री ने अत्यन्त शान्त भाव से सारा हाल सुनाया और कहा "यह सब अज्ञान के कारण है। अज्ञान मनुष्य का भयकर शत्रु है। ये बेचारे अज्ञानवश ऐसा कुकर्म करते हैं। भगवान इनको सद्बुद्धि देवे।" बीजापुर श्रीसघ ने उस सिपाही का पूरा इलाज कराया। वह स्वस्थ होकर अपने घर चला गया।

पूज्य आचार्यदेव बीजापुर मे पन्द्रह दिन रहे, धर्म के शुभ कार्य आपके सान्निध्य मे सम्पन्न हुए। यहाँ के श्रीसघ की भक्ति सराहनीय थी।

इस दु खद घटना को सुनकर मुनिश्री ललितविजय जी महाराज लम्बा विहार कर पूज्य चरणो मे बीजापुर पहुँचे।

जब उन्होंने पूज्य गुरुदेव को सकुशल देखा तब वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उनके चरणो मे कल्पलता के समान लिपट गये, फिर गद्गद् होकर बोले भगवन् ! आपके परिसह को देखकर मुझे अनन्त लब्धिवन्त महर्षि भद्रबाहु स्वामी रचित 'श्री कल्पसूत्र' मे वर्णित देवाधिदेव भगवान महावीर के परिसहो का स्मरण हो आता है। अनेक परिसह, उपसर्गो मे भी प्रभु सौम्य और शान्त रहे। सदा ज्ञान-ध्यान मे लीन रह कर प्राणिमात्र का हितचिंतन करते रहे और शुक्ल ध्यान मे रमण करते हुए वीतराग सर्वज्ञ बने। आप ग्रीष्म-ऋतु की तप्त धरती पर पैदल विहार करते हुए, भूख और प्यास सहन करते हुए इस मरुभूमि मे विचरण कर रहे है और ज्ञान-गगाजल पिलाकर लोगो को शान्ति का मार्ग दिखा रहे है। डाकुओ

द्वारा लूटे जाने पर भी विचलित नही हुए। उल्टा आपने उनके अज्ञान के प्रति दु ख प्रकट किया है और आप उनका हितचिंतन कर रहे हैं। आपका जीवन धन्य है। मैं इन दिव्य चरणो की सेवा मे नित्य रहूँ,' यही मेरी भावना है।

भावविभोर होकर मुनिश्री ने उपर्युक्त उद्गार प्रकट किये ही थे कि पूज्य आचार्यदेव ने स्मित वाणी मे कहा—यह साधु-धम है, यह मानव धर्म है। मेरी अभिलाषा है कि इस भूमि का अन्धकार मिट जाय। इसे प्रकाश चाहिए।

वाणी अथगर्भित थी। मुनि ललितविजय जी इसका भावाथ समझ गये। 'पूज्य आचार्यदेव इस क्षेत्र मे ज्ञान की ज्योति जलाना चाहते है।'

पूज्य आचायदेव की प्रेरणा से अज्ञानाच्छादित मरुभूमि मे ज्ञान-ज्योति जल उठी। अनेक विद्यादीप प्रज्वलित हुए जिसकी रक्षा की प्रखर शिक्षा प्रेमी, मरुधरोद्धारक, गुरभक्त आचाय श्री विजय-ललित सूरिजी महाराज ने।

१४

शताब्दी महोत्सव

[वडौदा नगर मे स्व आचायदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराज का शताब्दी महोत्सव मनाया गया, उस समय पन्यास श्री ललितविजयजी ने जो भावोद्गार प्रकट किये वे न केवल स्वर्णाक्षरो मे अकित है अपितु प्रेरणास्रोत भी हैं। उस अवसर पर श्री पार्श्वनाथ जैन वालाश्रम, उम्मेदपुर के वालको द्वारा 'वीर अभिमन्यु नाटक' भी खेला गया था।]

सवत् १९९२, चैत वदि १३ का शुभ दिन। वडौदा नगर मे शताब्दी महोत्सव की धूमधाम। वडौदा नगर के प्रताप विजय थियेटर के मैदान मे निर्मित विशाल मडप मे महोत्सव का आयोजन किया गया था। वैसे समस्त नगर की साज सजावट की गई थी परन्तु महोत्सव मडप की साज सज्जा निराली थी। सुन्दर तोरण द्वार वनाये गये थे—जैसे आत्मद्वार, लक्ष्मी द्वार, हर्ष द्वार, वल्लभ द्वार आदि। अहिंसा परमो धर्म का सुन्दर एव कलात्मक वस्त्र-पट अत्यन्त भव्य था। समस्त मण्डप मे सार कथनो के पट सुशोभित थे, उनमे उल्लेखनीय हैं—

१ ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी प्राणी की हिंसा न करे।

२ हिंसा के कटुफल भोगे विना छुटकारा नही है।

।। न य अवेदयिता अत्थि हु मोक्खो ।।

३ सत्य ही भगवान है।

।। त सच्च भगव ।।

४ अशुभ की अस्वीकृति एव शुभ की स्वीकृति ही अचौय है।

५ विषयातुर मनुष्य अपने भोगो के लिए ससार मे वैर बढाता है।

॥ वेर वड्ढेइ अप्पणो ॥

६ आसक्ति को ही परिग्रह कहा गया है।

॥ मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ॥

७ धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अतिम फल है।

८ विना भेदभाव के प्राणिमात्र के प्रति आदर रखना विनय है।

६ *प्राणी किससे भय खाते हैं ?*

दु ख से।

दु ख किसने किया है ?

स्वय आत्मा ने, अपनी ही भूल से।

१० मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है,

कर्म से क्षत्रिय होता है।

कर्म से वैश्य होता है।

कर्म से शूद्र होता है।

११ सद्गुण से साधु कहलाता है,

दुर्गुण से असाधु।

मडप मे चारो ओर टगे हुए इन सार वाक्यो पर दर्शको की दृष्टि ठिठक जाती थी। इनको पढकर वे चिन्तनशील बन जाते थे। वडौदा नगर, पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजयवल्लभसूरीश्वरजी की जन्म *भूमि है, अत इस महोत्सव के लिए नर-नारियो का उत्साह अद्वितीय* था। मडप के व्यासपीठ पर मध्य मे स्व० आचाय श्री विजयानन्द सूरीश्वर का भव्य चित्र सुशोभित था। एक उच्चपीठिका पर आचार्य *श्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराज पूज्य मुनिमडल के साथ* विराजमान हुए। दूसरी ओर पाट पर पूज्य साध्वी समुदाय ने अपने आसन ग्रहण किये। विशाल व्यासपीठ पजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र,

वम्बई, गुजरात, काठियावाड, वगाल, विहार, कच्छ, इत्यादि प्रान्तो से आये हुए हजारो गृहस्थ प्रतिनिधियो से शोभायमान था।

आत्मानन्द जैन गुरुकुल, गुजरावाला के बैण्ड के विजयनाद के साथ महोत्सव का शुभारम्भ हुआ। पूज्य आचायदेव ने मगलाचरण सुनाया। मगल वाणी से श्रोतागण आनदित हो गये। जैन महिला मडल वडौदा की वहिनो ने गुरु स्तुति का पाठ किया। श्रेष्ठि श्रमथा भाई गाधी ने स्वागत भाषण पढा। शताब्दी महोत्सव समिति के मत्री श्री वाडीलाल मगनलाल वैद्य ने मन्त्री पद से प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् देश-विदेश से प्राप्त शुभ सन्देश पढे गये।

आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरावाला के विद्यार्थियो ने 'कोई इसान नही था, वह तो देव था', का जब गीत गाया, तब श्रोतागण झूमने लगे। गुजरावाला आरती मडल ने अपने मधुर गीतो से श्रोताओ को रसमग्न कर दिया। पजाबी युवक श्री ज्ञानचन्द ने 'पीली चादर को ओढने वाले' गीत को जब सुनाया, तब सभी श्रोतागण मस्ती मे गाने लगे—पीली चादर को ओढने वाले। वातावरण भक्तिरस मे रग गया।

गुरुभक्त पन्यासजी श्री ललितविजय जी महाराज ने शताब्दी नायक स्वर्गीय आचार्यदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी का गुणगान करते हुए जो भाषण दिया, वह सारगर्भित था। उनके भाषण के कुछ अश यहाँ प्रस्तुत हैं शताब्दी नायक श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराज के जीवन भर किए कार्यों से गीताजी के इस श्लोक का स्मरण हो आता है

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।

इसमे बताया गया है कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब महान आत्मा उस अधर्म को मिटाने के लिये ससार मे अवतार लेते है। जैन समाज मे भी समयानुसार जब-जब विभूतियो की आवश्यकता हुई, तब-तब ऐसी विभूतियाँ अवतीर्ण हुई हैं। श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य जी, श्रीमद् हीरविजय सूरिजी, श्री उपाध्यायजी, श्री यशोविजय जी महाराज आदि महापुरुषो जैसी जैन जगत् की विभूतियाँ थी। आज से सौ वर्ष पहले जब जैन समाज को एक महान् आत्मा की आवश्यकता हुई, तब पजाब की पावन भूमि मे श्री आत्माराम जी (श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर जी) महाराज ने जन्म लिया। उन्होने सत्यधर्म प्रचार के लिए अपनी जान तक की परवाह नही की। उनका निश्चय था

'कार्य वा साधयेय, देह वा पातयेयम्।'

इसके अनुसार उन्होने अनेक सकट सहन कर भारत भर मे विशेषकर पजाब मे जैन धर्म का झडा फहराया। उनके पजाबी शरीर में लोहे का सा हृदय और सिंह की सी वीरता थी। शुद्ध चारित्र की तो वे साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। उनके प्रयत्नो की सफलता की साक्षी आज के उत्सव मे सम्मिलित, गुरुभक्त पजाबी भाइयो की उपस्थिति (लगभग दो हजार) दे रही है। इनकी गुरुभक्ति और एकता को देखकर आखो मे हर्षाश्रु आ जाते हैं। जब हम उन आत्मा का सन्देश सारे ससार मे फैला सकेंगे, तभी हमारा शताब्दी महोत्सव सार्थक समझा जायगा।

पूज्य ललितविजय जी महाराज साहब ने अपने भाषण के अन्तर्गत शताब्दी नायक की पुस्तको मे से उदाहरण दिये। 'तत्त्व-निर्णयसार' का निम्नलिखित अश उन्होने पढकर सुनाया "जैन धर्म का रहस्य यह है कि सब जीवो का रक्षण करना (दया पालनी)। सबको समान समझना, भ्रातृभाव रखना, विद्याशाला,

औषधालय, पशुशाला स्थापना, साथ मिलकर भक्ति करना। पाप का पश्चात्ताप करना, पापकर्म से छूटने को धर्म का ज्ञान सपादन करना, पाप नही करने को दृढ निश्चय करना, किसी से रागद्वेष नहीं करना, अगर भूल से या प्रमाद के वश से हो गया होवे तो मन मे पश्चात्ताप करके क्षमा का चाहना, सद्धर्म को फैलाना, प्रवृत्ति मार्ग को त्याग के निवृत्ति मार्ग लेना, आत्मज्ञान प्राप्त करना पापरहित उद्यम मे प्रवर्त्तना, मन, वचन, काया (कर्म) से पवित्र होना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का त्याग करना, सयम, मनोनिग्रह और तप करना। धर्म मार्ग को पुष्टि देने वाले ये तमाम कार्य हैं। इनको साध्य करने को और आत्मा के कल्याण करने को निर्लोभी, निर्विकारी, शात, दात, सयमी, विद्वान समुदाय के सदुपदेश की अतीव आवश्यकता है"

ज्योतिधर श्रीमद् आत्माराम जी कृत 'तत्त्वनिर्णयसार' मे धर्म की व्याख्या इस प्रकार दी गई है

"इस ससार समुद्र मे सतत पर्यटन करने वाले प्राणियो को जन्म-मरणादिक अत्युग्र दु खो से मुक्त करने वाला केवल एक धर्म ही है।"

पूज्य ललितविजय जी महाराज साहब ने अपने व्याख्यान के अतर्गत स्वर्गीय आचार्यदेव का वह सदेश सुनाया जो उन्होने भारतीय युवको को दिया था। यह सन्देश लाला बाबूराम कृत 'आत्म चरित्र' (उर्दू) पृष्ठ ११२ पर अकित है।

"होश मे आओ! तुम कौन हो और किधर जा रहे हो? तुम्हारे पूर्वजो का चरित्र तुम्हारे लिए प्रकाशमान दीपक के समान है। उनके महान् कार्यो को पढो। तब तुम्हे ज्ञात होगा कि पूर्व ने पश्चिम को अपने प्रकाश से किस प्रकार लाभ पहुँचाया है। तुम्हे

पूर्व की ओर देखना चाहिये जहाँ से सूर्य देवता अपना प्रकाश डालता है, न कि पश्चिम की ओर जिधर वह अस्त होता है।"

पूज्य श्री ने बताया कि स्वर्गीय आचायदेव भारतीय सस्कृति और महानता के प्रशसक थे। भारत के युवक पश्चिम की तडक-भडक मे न आवें।

इस अवसर पर पडित सुखलालजी, पडित हसराज जी, डा हीरानन्दजी शास्त्री आदि के विद्वत्तापूर्ण भाषण हुए। इस प्रसग पर मुनि श्री चरणविजय जी ने स्वर्गीय आचार्यदेव की प्रशस्ति मे कहा 'आज का अनुपम महोत्सव जैन समाज के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायगा। सौ वर्ष पहले किसी को यह स्वप्न भी आया था कि भ्रम तथा अज्ञान के अधकार मे पडी हुई नैया का कोई खिवैया भी मिल जायगा। आगत सज्जनो, इस महोत्सव को चार दिन के बाद भूल मत जाना, यहा से यह प्रतिज्ञा करके जाना कि हम स्व आचार्य महाराज का सदेश (जैन धर्म का सच्चा सन्देश—अहिसा, प्रेम) सारे भारतवर्ष मे पहुँचाने का सतत प्रयत्न करेंगे।

स्वर्गीय आचायदेव को श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए मुनिश्री समुद्रविजयजी (वतमान जिनशासनरत्न आचायदेव) ने कहा "स्वर्गीय आचार्यदेव महान् क्रातिकारी दिव्य महापुरुष थे। उनका जीवन कल्पतरु के समान पवित्र था। सयम-पालन मे वे सिंह के समान थे। उनकी करुणा अद्वितीय थी। उनका ज्ञान सूर्य के समान तेजसी था जिससे अज्ञानतिमिर दूर हुआ। ऐसे ज्योतिधर दिव्य आचायदेव के अनन्त गुणो का वर्णन मेरे जैसा अल्पमति कैसे कर सकता है? ऐसे अनन्त लब्धिवत आचार्यदेव के चरण कमलो मे कोटिश प्रणाम।"

पूज्य आचायदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज ने स्वर्गीय गुरुदेव की प्रशस्ति मे कहा। "महान् जैनाचार्य श्रीमद्

विजयानन्द सूरीश्वर जी महाराज महर्षि श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी, श्रीमद् हीरविजय सूरि जी के समान दिव्य महापुरुष थे। देश और विदेश के विद्वान् इनके पद-पद्मो मे श्रद्धावनत होते थे। इनके असख्य गुणो का वर्णन करना असभव है।"

पूज्य गुरुदेव ने समापन करते हुए प्रसिद्ध अग्रेज विद्वान् डॉ ए एफ रुडाल्फ हार्नल की वे पक्तियाँ सुनाई जो उन्होने स्वर्गीय आचार्यदेव को समर्पित उपासकदशाग ग्रन्थ मे लिखी हैं

आप (पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् आत्माराम जी) रविप्रकाश के समान अज्ञानरूपी अन्धकार दूर करते हो, आप मानव मे सद्भावो की अमृत वर्षा करते हो। आप जैन दर्शन मे निंदित १८ पापो की कालिमा से रहित हो। आप ज्योतिपु ज हो आप साक्षात् आनन्दघन रूप हो। आप दिव्य प्रकाश हो। आपने मेरे समस्त सशयो को अपने ज्ञान के दिव्य प्रकाश से मिटा दिया है, अत अत्यन्त श्रद्धा तथा कृतज्ञ भाव से मैं अपना यह ग्रन्थ पुष्प अर्पित करता हू।"

[अठारह पाप स्थानक–१ हिंसा, २ झूठ बोलना, ३ चोरी, ४ मैथुन (अब्रह्म) ५ धन-दौलत का मोह, ६ क्रोध, ७ गर्व, मद, घमण्ड, ८ माया, ९ लोभ, १० राग, ११ द्वेष, १२ क्लेश, १३ दोषारोपण (व्यर्थ ही किसी पर लाछन लगाना,) १४ चुगली, १५ हर्ष और उद्वेग-आवेश, १६ दूसरो को बुरा कहना और अपनी प्रशसा करना, १७ प्रवचना-ठगाई, छल-कपट, १८ मिथ्या दृष्टि-कोण। ये १८ पाप आत्मा को मलिन करते हैं। परिणामस्वरूप जीव को ८४ लाख जीवयोनियो के जन्म-मरण के चक्कर मे भटकना पडता है।]

पूज्य गुरुदेव द्वारा यह प्रशस्ति सुनकर श्रोतागण गद्गद् हो गये। थोडे से शब्दो मे स्वर्गीय आचार्यदेव का सम्पूर्ण जीवन दर्शन

प्रकाशित हो गया। जैन दर्शन का सार भी इसमे निहित था। पू गुरुदेव ने मागलिक सुनाया। सभा हर्षपूर्वक विसर्जित हुई।

रात्रि के समय 'वीर अभिमन्यु' नाटक जैन बालाश्रम, उम्मेद-पुर के बालको द्वारा खेला गया, जिसकी सभी ने प्रशसा की। पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् ललित सूरीश्वर जी महाराज द्वारा पोषित बालाश्रम के बालको का नाटकाभिनय देखकर दर्शक अतीव प्रसन्न हुए।

१५

अमृत-बिंदु

[पूज्य आचार्य श्री विजयललित सूरीश्वर जी महाराज साहित्य-कला-ममज्ञ थे। उन्होने सुदर पुस्तकें लिखी है जिनमे उल्लेखनीय हैं—'महावीर-सन्देश', 'हिन्दी कुमारपाल-चरित्र', 'जगद्गुरु विजयहीर सूरीश्वर जी चरित्र' आदि। यहाँ पर महावीर-सदेश तथा कुमारपाल-चरित्र के कुछ अश प्रस्तुत करता हू जो कला और भाव की दृष्टि से सुदर व शिक्षाप्रद हैं।]

परमात्मा का सन्देश—

> श्रूयता धर्मसर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
> आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत् ॥१॥

ससार मे प्राणि मात्र को सुख इष्ट है और दुख अनिष्ट है। विकलेन्द्रिय से लेकर इन्द्रपर्यन्त सब प्राणी सुख के अभिलाषी हैं, परन्तु सुख की प्राप्ति के साधनो को कैसे सम्पादन करना, इस बात का समझना जरा कठिन है। कितनेक विचारे मोहमूढ पुद्गलानन्दी जीव अपने सुख के लिए दूसरे को दुख मे डालने के उपाय करते हैं। कोई एक धन के नष्ट होने पर अन्याय, चोरी आदि अनाचार करते है। कितने प्रथम झूठ बोलकर जब किसी प्रसग मे खूब तग हो जाते है तो फरेब कर मुक्त होना चाहते हैं। निष्पाप को सपाप और पापी को निष्कलक बनाने का उद्यम करने मे अपना कौशल प्रकट करते हैं। अपने माथे पर चढ आये हुए आपत्ति के बादल जब

दूसरे किसी पर वरस जाते हैं तो धर्महीन अज्ञ खुशी मनाते फूले नही समाते हैं परन्तु वे यह नही समझते कि—

> अवश्यमेव भोक्तव्य, कृत कर्म शुभाशुभम् ।
> न क्षीयते कृत कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥

(बल्कि) राग द्वेप के दृढ आवेश मे आकर धर्म से सर्वथा निरपेक्ष होकर यदि पापाचरण किया जावे तो उस कर्म का परमाणु मात्र से मेरु होकर भी छूटना कठिन हो जाता है। अपने दोप को न देखकर सिर्फ दूसरे जीवात्मा को सताप देकर और पाप युद्ध अकृत्य से निवृत्त न होकर अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ करने मे भी मनुष्य पीछे नही हटता !! ऐसी दशा मे उसे उपदेश का देना, सन्मार्ग का वतलाना व्यर्थ है। इस विषय मे आचार्य श्री हरिभद्र सूरि जी का एक सूत्र मनन करने योग्य है। उन्होने योग्य मनुष्य को उपदेश देने का अधिकार वर्णन करते समय कह दिया है कि—

> "ये वैनेया विनयनिपुणस्ते क्रियन्ते विनीता,
> नावैनेया विनयनिपुणैः शक्यते सविनेतुम् ।
>
> दाहादिभ्यः समलममल स्यात्सुवर्ण सुवर्ण,
> नायस्पिण्डो भवति कनक छेदवदाहक्रमेण ॥"

अर्थ—जो मनुष्य स्वभाव से ही विनयनिपुण होगा उसे ही उपदेष्टा विशेप ऊँचे दर्जे पर चढा सकता है। जो स्वभाव से ही कठोर परिणामी है, छली है, छिद्रान्वेषी है, परवचक है, उसे कोटि उपदेश भी मार्गगामी नही कर सकते।

इस वात पर आचार्य एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त देते हैं कि जो सुवर्ण कुछ अन्य कुधातुओ से मिश्रित है, परन्तु है जाति का सुवर्ण, उसी को तेजाव वगैरह के योग से शुद्ध कुन्दन वनाया जा सकता है। परन्तु

जो है ही लोहे का टुकडा उसको छेद-दाह-ताडन, तापनादि अनेक उपाय करके भी कोई सुवर्ण नही बना सकता । कहावत है कि—

"सौमन साबन मलके धोवे गदर्भ गाय न थाय"

ससार स्वरूप

ध्यान हुताशन मे अरि ईधन, झोक दियो रिपु-रोक निवारी ।
शोक हर्यो भविलोकन को वर, केवलज्ञान मयूख उधारी ।।
लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पक पखारी ।
सिद्धन थोक बसे शिव लोक, तिन्हे पग धोक त्रिकाल हमारी ।।१।।

किसी भी राष्ट्र, समाज या धर्म की उन्नति का प्रधान कारण तद्विषयक शिक्षा ही है। सुशिक्षितो को ही अपने देश, समाज, धर्म की यथार्थ परिस्थिति का भान हो सकता है । वे ही उसका उपाय सोच सकते हैं। ऐसे सुशिक्षित मनुष्य जिस जाति में जितने ज्यादा होंगे उतना ही अपना, अपने राष्ट्र का, समाज का या कुटुम्ब का भला कर सकेंगे ।

वर्त्तमान समय मे देखो, जापान जो एशिया के हर्ष का वर्द्धक हो रहा है, उसका कारण आज शिक्षा-प्रणाली के सिवाय अन्य क्या माना जा सकता है ? जैसे सूर्य तुम्हारे सामने चक्कर लगाता हुआ दृष्टिगोचर होता है ठीक उसी प्रकार से सारा ससार नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे, उदय से अस्त, अस्त से उदय इन पर्याय धर्मो का वेदन करता चला जा रहा है ।

ससार का कोई पदार्थ स्थिर नही, सृष्टि क्रम यह बता रहा है । समय यह कह रहा है कि वह एक न एक दिन नीचे आयेगा, गिरेगा, उसकी जरूर अवनति होगी जो ऊपर गया है । इस विकराल काल की चाल से बचे हैं तो परमात्मा बचे हैं, बाकी सर्व ससारी

जीवो का चाहे वह इन्द्र से भी ऊपर के अहमिन्द्र क्यो न हो ? एक रास्ता है।

ससार और ससारी जीवात्मा का ऊपर जाना नीचे आने ही के लिए है। जैसे उन्नति का अत अवनति पर ठहरा हुआ है वैसे ही अवनति के बाद अवश्य उन्नति है।

इस नियम का उल्लघन वह कर सकता है जो ससार से मुक्त हो गया है, वरन् ससार उसी का नाम है। जो कोई इस नियम का उल्लघन न कर सकता हो। कवियो की मान्यता है कि जो जल समुद्र से उठकर भाप होकर बादल बन कर अहकार से मत्त हुआ हमारे ऊपर आकाश मे घूम रहा है, इतना ही नही, बल्कि गर्जना और तर्जना कर रहा है, कौन नही जानता कि वह एक न एक दिन नीचे आवेगा, और वहा जायेगा जहा से आया था।

बस यह ससार ही नही किन्तु ससार चक्र भी है। आपने अब इसका मतलब अच्छी तरह समझ लिया होगा, अधिक कहना श्रोताओं की बुद्धि की अवज्ञा करना है। कवि कालिदास ने लिखा है—

यात्येकतोऽस्तशिखर पतिरोषधीना
माविष्कृतोऽरुणपुरस्सर एकतोऽर्क ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इयात्मदशान्तरेषु ॥१॥

प्रिय बन्धुओ ! जो गिरा हुआ है उसकी अवश्य उन्नति होगी, मान लो कलियुग इसी लिए आया है कि सतयुग का मार्ग साफ और निष्कण्टक बन जाय।

समय की परिस्थिति

देखो काल की गति कैसी विचित्र दीख पडती है। जब यहाँ दिन होता है तो अमेरिका मे रात होती है। ठीक इसी प्रकार से जब

उन्नति का सितारा भारतवर्ष पर चमकता था तो अमेरिका वगैरह का कोई नाम भी नही जानता था।

शासन नायक वीर प्रभु के निर्वाण के कुछ वर्ष पीछे अशोक राजा का पौत्र सम्प्रति नरेश हुआ कि जिसने अपने अखड शासन के बल से अमेरिका प्रभृति देशो मे भी "स्याद्वाददर्शन" का प्रचार किया। उन देशो मे अपने सुशिक्षित उपदेष्टाओ को भेज कर जैन धर्म के उन गूढ तत्वो को समझाया जो उनके लिए अश्रुत पूर्व थे। आज भी उन देशो मे से निकलती हुई तीर्थंकर देवो की प्रतिमायें इस सत्य घटना की बरावर सत्यरूप से गवाही दे रही हैं।

विद्या और दान

इस वक्तव्य का साराश यही निकला कि परिवर्तन ससार का स्वभाव है। जिस जनपद का नेता न्यायशील होगा, जहा की जनता अपने हेयोपादेय की समझने वाली होगी, उसका अवश्य उदय होगा। प्राचीन समय मे लोग विद्याव्यसनी होते थे, धन व्यय करने मे उदारता प्रकट करते थे, इससे वे अपने समाज के ह्रास के कारणो को देखते ही तत्काल उपाय कर लेते थे। आज-कल यद्यपि लोग धन-सम्पत्ति मे सुखी हैं तो भी तादृशज्ञान सम्पदा के न होने से देश का जैसा चाहिए वैसा भला नही हो सकता।

हालाकि आज भी भारत के दानवीर दान देने मे अपनी प्राचीन उदारता से पीछे नही हटे। ऐतिहासिक साधन साक्षी देते हैं कि हमारा यह सभ्य ससार पैसा खर्चने मे किसी तरह से भी हाथ पीछे नही हटाता।

आदर्श जीवन

यदि कोई हमसे पूछे कि जीवन का अलकार क्या है ? तो हम नि सकोच होकर कह देते हैं कि चरित्र ही जीवन का एकमात्र अलकार

है। चरित्र आत्मा की एक विशेष शक्ति है, इसी शक्ति के प्रभाव से हमारी नीच भावनाओं का दमन होता है, हृदय के अपवित्र भाव दूर होते है, हम पवित्रता प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठते हैं, और सत्य की खोज मे प्राण तक देने को तैयार हो जाते हैं। इसी शक्ति बल के प्रभाव से हम भीषण प्रलोभनो का सामना करने के लिए खडे हो जाते है। सम्राट की अपकृपा से भी विचलित नहीं होते, और कठोर जीवन सग्राम मे जयलाभ प्राप्त कर सकते हैं। ससार मे जितने प्रतिष्ठित व्यक्ति हो गये है वे सब इसी अद्भुत शक्तिबल के प्रभाव से पूज्य हुए हैं। धन और ऐश्वय द्वारा किसी व्यक्ति ने किसी काल मे भी महत्ता प्राप्त नही की। चरित्र ही महत्ता प्राप्त करने का एक मात्र सोपान है।

यह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है, यही विश्व का नियता है, इसी के भय से चन्द्र, सूर्य उदय होते हैं, वायु सचालन करती है, इसी से निर्मल पविनता का स्रोत प्रवाहित होकर पापमय जगत को स्वर्ग-भूमि मे परिणित कर देता है, वही इस अद्भुत शक्ति का जन्मदाता है। नही तो क्षीणकाय दुर्बल मनुष्य किस बल से बलवान् होकर वह सारे स्वार्थों और अपने प्राणो तक के विसर्जन कर देने मे भी कातर नही होता।

एक न्याय का अनुष्ठान करने से सारा ससार तुम्हारी सहायता करने के लिए तैयार हो जायेगा। उस न्यायानुष्ठान के प्रतिष्ठित करने मे तुम्हारा सवस्व ही क्यो न चला जावे तो भी तुम्हारे हृदय मे लेशमात्र कष्ट न होगा किन्तु एक अन्याय युक्त आचरण करने मे तुम्हें सौ बिच्छुओं के काटने के समान पीडा होगी। तुम्हारा हृदय अशान्ति का घर बन जावेगा और तुम ससार को नरक के समान भीषण स्थान समझोगे, तब तुम सोचोगे कि तुम ससार मे अकेले हो, सारा ससार तुम्हारी ओर घृणा पूर्ण

दृष्टि से देख रहा है, कोई भी तुम्हे आश्वासन द्वारा शाति देने के लिए प्रस्तुत नही। ससार के सम्पूर्ण व्यक्तिगण तुम्हारी पापमय सगति मे दूर भागना चाहेगे। इसी प्रकार न्याय और अन्याय मे भी भेद है, भगवान का भक्त भारी विपत्ति मे भी अन्याय का परित्याग करके न्याय का अनुसरण करता है, इसका और कोई कारण नही, वह न्याय के बीच परमात्मा की शक्ति देखकर ही उस पर अनुराग करता है।

शिक्षा का प्रयोजन

अनेक माता-पिता अपने पुत्र को इस आशा से पाठशाला मे भेजते हैं कि मेरा बेटा पढ लिख कर कोई ऊँचा पद प्राप्त करेगा, किन्तु उन्हे स्मरण रखना चाहिए कि उनका पुत्र चरित्र गठन ही से ज्ञानी बन सकता है। इस विषय की उपेक्षा करना अपनी सतान पर घोर अन्याय करना है। चरित्र गठन ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए। यह बात सत्य जान पडती है कि विद्वान् होने से उच्च पद की प्राप्ति होती है, किन्तु चरित्र के अभाव मे वह उच्च पद सुरक्षित नही रह सकता। अतएव पुत्र को चरित्रवान् बनाने के लिए चरित्र गठन पर ध्यान रखना माता पिता का प्रधान कर्त्तव्य है।

सम्राट से लेकर एक सामान्य किसान के बालक तक को अपने व्यवसाय मे सफलता प्राप्त करने के लिए ज्ञान और चरित्र की अत्यन्त आवश्यकता है। इतने विवेचन से सिद्ध हुआ कि क्या राजकुमार और क्या किसान के बालक दोनो को शिक्षित होना बहुत आवश्यक है।

अनेक व्यक्तियो की धारणा है कि पैतृक व्यवसाय अथवा किसी अन्य व्यवसाय मे शिक्षा की आवश्यकता नही है। मैं पूछता हू कि मानव समाज को अज्ञान के घोर अन्धकार मे रखने का किसे

मे जिस प्रमाण से ज्ञानप्रभा प्रकाशित होती है उसी परिमाणानुसार हमारे कार्य की सिद्धि होती है। चरित्रवान् किसान का बालक क्या चरित्रवान् राजकुमार के समान सुन्दर नहीं ? तब फिर एक को शिक्षा देने व दूसरे को उससे वंचित रखने वाले तुम कौन हो ? यह बात अवश्य स्वीकार की जा सकती है कि व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा सबको एक ही सी नहीं दी जा सकती। राजकुमार को राजनीति सम्बन्धी और किसान के बालक को कृषि सम्बन्धी ही शिक्षा देना उचित है, किन्तु जो शिक्षा ज्ञानवान् बनाती है और चरित्र गठन करती है वह सब एक ही ढंग की देना उचित है, इसी शिक्षा का नाम शिक्षा है।

परमार्थ और देशसेवा

खान की मिट्टी जिसको खान मे से खोदकर उसके टुकडे-टुकडे किये जाते हैं, इतना ही नहीं वरन् उसको गधो पर चढाया जाता है, पानी मे भिगोकर उसे पैरो के नीचे मन्थन किया जाता है, चक्र पर चढाकर खूब घुमाया जाता है तो भी शाबासी है उस सहनशील जाति को कि जो इतने कष्टों को सहन करती हुई भी पात्र बनकर ससार की स्वार्थ सिद्धि करती है।

और भी सुनिये, कपास के डोडा को तोडकर सार निकाल लिया जाता है, उस सारभूत कपास को भी धूप मे फैंक कर खूब तपाया जाता है। मार मार कर इसके पीछे-पीछे जुदे किये जाते हैं, यन्त्र मे पीली जाती है, पिता-पुत्र का आजन्म वियोग किया जाता है, लोहे की शूली पर चढाया जाता है, अनेक औजारो मे मारी पीटी जाती है तो भी वह उपकारी पदार्थ वस्त्र बन कर कुल ससार भर के नर नारियो का शृ गार करती है। तो अरे-निसार ! अरे ससार सार जीवन ! मनुष्य ! सचेतन होकर अमूल्य मानव भव मे कुछ भी निज पर का उपकार न करेगा तो तुझे और क्या कहे ?

[illegible]

मनुष्य जन्म पाय सोवत विहाय जाय,
खोवत करो रन की एक-एक घरी है।

किसी ने यह लुकमान से जाके पूछा जरा इसका मतलब तो समझाइयेगा।

जमाने मे कुत्ते को सब जानते हैं,
वफादार भी उसको सब मानते हैं,
ये करता है जा अपने मालिक पे कुरवा
खिलाना है बच्चा का हार का निगाहवा ॥
भरा है ये खूने मुहब्बत रगो मे,
न देखा सगो मे जो देखा सगो मे ॥
पडे मार खाकर भी यह दुम दवाना,
कि दुशवार हो जाय पीछा छुडाना ॥
जगत् मे है मशहूर इसकी भलाई।
मगर नाम मे है क्या इसके बुराई ॥
किसी आदमी को कहे हम जो कुत्ता।
तो मुँह पर वही दे पलटकर तमाचा ॥
कहा उसमे लुकमान ने वात यह है।
खुली वात है कुछ मुइम्मा नही है ॥
यह माना है बेशक वफादार कुत्ता।
बडा जाँ निसार और गमखार कुत्ता ॥
फकत आदमी पर है यह जाने सारी।
मगर कौम की कौम दुश्मन है भारी ॥
यह रखता है दिल मे मुहब्बत पराई।
खटकते हैं इसकी निगाहो मे भाई ॥
नजर आवे इसको अगर गैर कुत्ता।
तो फिर देखिये इसका तौरी वदलना ॥

न जिसने कभी कौम को कौम माना।
यहे क्यो न मरदूद उसको जमाना।
बुरा क्यो न मानेंगे अहले हमीयत।
कि औरो से उलफत सगो मे अदावत ॥

[पूज्य गुरुदेव की भाषा शैली कितनी मस्त है, हिन्दी, उर्दू, फारसी और सस्कृत शब्दो का प्रयोग रसानुकूल है। अर्थ स्पष्ट करने के लिए सस्कृत, उर्दू और फारसी काव्य के काव्याश भी यत्र-तत्र फबते हैं।]

ज्ञानभक्ति

पठ पठति यततस्वाऽन्नादिना लेखय स्वै,
स्मर वितर च साधौ ज्ञानमेतद्धि तत्त्वम्
श्रुतलवमपि पुत्रे प्राप्य शय्यंभवोऽस्मा-
ज्जगति हि न सुधाया मानत पेयम यद् ॥१॥

(अर्थ) हे भव्यात्माओ ! ज्ञान का अभ्यास करो। और पढने पढाने वालो को अन्नादि से सहायता दो। न्यायोपार्जित द्रव्य से ज्ञान की पुस्तक लिखाओ, याद करो, साधु, साध्वी, श्रावक,-श्राविका को ज्ञान-दान दो।

यह ही तत्व है, देखो शय्यभव सूरिजी ने अपने पुत्र को स्वल्पमात्र भी ज्ञान देकर निस्तारित किया। ससार मे अमृत से बढ कर और कोई अधिक वस्तु है ? ॥१॥

[वि वि]—एकठा किया हुआ धन साथ जाने वाला नही है। उसके पैदा करने मे, रक्षण करने मे, खचने मे, अनेक कष्ट सहन पडते हैं। धन के नष्ट हो जाने मे जो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान* होता है उससे जीव दुर्गति मे चला जाता है।

* जैन धम में ध्यान चार प्रकार के माने गये हैं। आर्त्त ध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान।

ऐसी दशा मे मनुष्य को चाहिए कि अनेकानेक कष्टो से कमाये हुए पैसे को शुभ मार्ग मे व्यय करे। व्यय करने के मार्गों मे से सात भाग मुख्य है—

१ जिनविम्व २ जिन-चैत्य ३ ज्ञानोद्धार ४ साधु ५ श्रावक ६ श्राविका ७ जिनचैत्य।

ज्ञानोद्धार के सम्बन्ध मे जानना चाहिए कि-लिखना-लिखाना रक्षण, पालन करना अनेकानेक देशो मे फैलाना, लाईब्रेरी करनी, शिक्षा का प्रचार करना। साधु साध्वी श्रावक श्राविका-और भाविक मार्गानुसारी जनो को ज्ञान के तमाम साधन देने, दिलाने, शासन की शोभा के लिए दार्शनिक ग्रन्थो का प्रचार करना। उपदेशक तैयार करके अन्यान्य देशो मे उन्हे भेजकर धर्म का फैलाव करना, यह सब ज्ञानभक्ति कही जाती है। सर्व प्रयत्न से सर्वज्ञभाषित ज्ञान का सर्वत्र प्रसार करके उसको सर्वोत्तम स्थान दिलाना यह उत्तमोत्तम ज्ञान सेवा-ज्ञान महिमा ज्ञान-पूजा कही जाती है।

विक्रम की बारहवी से सोलहवी सदी तक साधुओ मे पठन-पाठन का प्रचार अल्प हो गया था, परन्तु उस वक्त भी आचार्यों ने कायदा कायम कर रखा था कि साधु प्रतिदिन १०० श्लोक लिखे तो ही उसको विगय और शाक देना अन्यथा नही।

ज्ञान-सागर सूरिजी के मुख से माडवगढ के रहने वाले सुश्रावक सग्रामसिह सोनी ने बडी श्रद्धा-भक्ति से श्री 'भगवती सूत्र' सुना, उस शासनप्रेमी वीरवचनो के अनुरागी ने जहाँ जहाँ 'गोयमा!' पद आता था वहाँ वहाँ एक एक अशर्फी रख कर ३६ हजार अशर्फिया खर्च कर सम्पूर्ण भगवती सूत्र की आराधना की। सग्रामसिह जब जहाँ एक सोना मोहर रखता था उस वक्त उसकी माता आधी अशर्फी और उनकी पत्नी एक अशर्फी का चतुर्थ खण्ड रखती थी। इस प्रकार श्री भगवती सूत्र के सुनने मे उन्होने ६३००० सोना-मोहरें चढाई। उसमे ३७००० मोहरें और मिलाकर उस सम्पूर्ण १ लाख द्रव्य से

'कल्पसूत्र' 'कालिकाचाय कथा' नामक ग्रन्थ सोनहरी अक्षरो से लिखाकर भण्डारो मे रखाए। यह घटना वि स १४५१ मे हुई थी। कुमारपाल राजा के स्वर्गवास के बाद जब अजयपाल ने उपद्रव मचाया, तब कुमारपाल के बनवाये कार्यों का ध्वस देख कर आम्र-भट्ट ने प्राचीन और नवीन जैन ग्रथो को १०० ऊँटो पर लाद कर जयसलमेर पहुँचाया।

सुना गया है कि वल्लभी नगरी के भग के समय ३००००० श्रावक कुटुम्ब और कितनेक धर्माचारी शास्त्र और जिन-प्रतिमाओ को लेकर मारवाड की तरफ चल निकले। उन्होने मारवाड में आकर जोधपुर के जिले में जो बाली गाम कहा जाता है उसको आबाद किया, और अपने प्राणो से भी प्रिय मानकर शास्त्र और भगवत् प्रतिमाओ की रक्षा करते रहे। कुमारपाल राजा ने कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सूरिजी के बनवाए हुए–

१ अनेकाथ सग्रह
२ अनेकार्थ कोप
३ अभिधान चिन्तामणि
४ अभिधान चिन्तामणि परिशिष्ट
५ अलकार चूडामणि
६ उणादि सूत्र वृत्ति
७ उणादि सूत्र विवरण
८ छन्दोऽनुशासन और वृत्ति देशी नाम माला
६ धातुपाठ और उसकी वृत्ति
१० धातु परायण और उसकी वृत्ति
११ धातु माला
१२ निघटु शेप
१३ बलाबल सूत्र वृत्ति
१४ द्वैमविभ्रम
१५ सिद्ध हेमशब्दानुशासन

(वृहद्वृत्ति और लघुवृत्ति)

१६ शेष सग्रह नाम माला
१७ शेष सग्रह सारोद्धार
१८ लिंगानुशासन सटीक
१९ लिंगानुशासन विवरण
२० त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
२१ परिशिष्ट पर्व
२२ हेमन्यायार्थ मजूषा
२३ सस्कृत द्वयाश्रय
२४ प्राकृत द्वयाश्रय
२५ हेमवादानुशासन
२६, महावीर द्वात्रिंशिका
२७ वीर द्वात्रिंशिका
२८ वीतराग स्तोत्र
२९ पाडव चरित्र

इत्यादि अनेक ग्रन्थो की अनेक प्रति लिखाकर राजा ने भारतवर्ष के अनेकानेक गाम नगरो के ज्ञान भण्डारो मे रखवाई थी।

इसके अतिरिक्त (११) अग (१२) उपाग (१०) प्रकीर्णक, (६) छेद, (४) मूल, नदि, अनुयोगद्वार, इन (४५) ही आगमो की एक-एक प्रति सोनहरी अक्षरो मे अनेक प्रते स्याही से लिखाके भूपति ने खभात, धोलका, करणावती, चद्रावती, डूगरपुर, वीजापुर, प्रल्हादनपुर, राधनपुर, पादलिप्तपुर (पालीताणा) जीर्णदुर्ग, (जूनागढ) माडवगढ, चित्तौडगढ, जयसलमेर, बाहडमेर, दर्भावती, वडोदरा, आकोला, उज्जैन, मथुरा प्रमुख उत्तम उपयोगी स्थान मे रखवा दी थी।

इसके अलावा—कर्णदेव, सिद्धराज, भीमदेव, वीसलदेव, सारगदेव, वीरधवल, सोमसिंह आदि राजाओ ने भी जैन ज्ञान भडारो की वृद्धि मे पुष्कल मदद की है।

और मत्री उदयन, वाहड, अबड, वस्तुपाल, तेजपाल, कम्माशाह, समराशाह, छाडाशाह, मोहनसिंह, साजनसिंह आदि अनेक राजमान्य मत्रियो ने तो अपनी सपत्ति का प्राय उपयोग ज्ञान और जिनचैत्यो के अन्दर ही किया है। परन्तु वडे दु ख की बात है कि देश और समाज के दुर्दैव से कुमारपाल आदि के पुस्तक सैकडो वर्ष पहले ही नष्ट हो चुके हैं। इसका कारण प्राय प्रसिद्ध ही है कि जो लोग अपने प्राणो को हाथ की हथेली मे लेकर सैकडो वर्षों तक इधर से उधर मारे मारे फिरे हैं, वह इन पुस्तकालयो का सर्वथा कैसे बचा सकते थे ?

कुमारपाल के लिखाये पुस्तको का नाश तो उसके उत्तराधिकारी अजयपाल ने ही कर दिया था। ईस्वी सन् ११७४-७६ मे गुजरात के अजयदेव नामक एक शैव राजा ने राज्य पर आते ही वडी निर्दयता से जैनो का वध कराया और उनके गुरुओ को भी मरवा डाला ऐसी दशा मे वह उनके पुस्तको को जिन पर उस धर्म का आधार था कैसे छोड सकता था।

(विन्सेंट ए, एम ए का भारत का प्राचीन इतिहास।)

कुमारपाल के बाद बहुत ग्रन्थो का सग्रह वस्तुपाल तेजपाल ने कराया था, सो उसका नाश अलाउद्दीन के अत्याचारों से हो गया।

परम श्रद्धालु जैन लोगो ने जो बचा लिए सो आज भी पाटण, खभात, लीवडी, जयसलमेर, अहमदाबाद आदि शहरो मे प्राप्त हैं।

[सन् १९१६ जनवरी की सरस्वती मे 'पाटण के जैन पुस्तक भडार' इस नाम के लेख से, अन्यान्य प्रबधो से मालूम होता है कि कुमारपाल ने २१ बडे-बडे ज्ञान-भण्डार करवाये थे, कुमारपाल के किये कराये सर्व शुभ कार्यों के ज्ञान के लिए मेरा लिखा—

"हिन्दी कुमारपाल चरित" देखिये।]

जिन बिम्ब

इस लोक में छोटा या बडा एक भी जिन बिम्ब कराया होय,

तो वह विद्युन्माली देवता को जैसे कल्याण का कारण हुआ वैसे सब भव्यात्माओं को हो सकता है।

जिन चैत्य (जिन मन्दिर)

जिस शुद्ध मन वाले सदाचारी भव्यात्मा ने अपने हाथ के कमाये हुए धन से आत्म कल्याण के निमित्त जिन मन्दिर बनवाया है, उसके संसार में सारभूत तीर्थंकर पद प्राप्त किया माना जाता है। उसने अपने जन्म का फल प्राप्त कर लिया और अपने गोत्र को परम पवित्र करने के साथ जिनशासन को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया।

—ललित वाणी

१६

प्रेरक प्रसंग

भक्ति की शक्ति असीम होती है। उस शक्ति का अखड स्रोत है– श्रद्धा। सद्देवगुरुधर्म के प्रति निर्मल श्रद्धा से अजय शक्ति प्राप्त होती है जिससे नवनिद्धि और अष्टसिद्धि सहज ही उपलब्ध होती है। परन्तु श्रद्धावान् भक्त उनकी चाहना नहीं करता, वह अनन्त-कृपालु भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि वह जन्म-जन्मान्तर भक्ति रग मे रगा रहे। यही उसकी अभिलाषा रहती है।

श्री हनुमानजी की अपने आराध्यदेव भगवान राम के प्रति अनन्त श्रद्धा थी, फलस्वरूप वे पर्वत-खण्ड को भी उठा कर ले आये और लका मे मेघनाद की शक्तिबाण से मूच्छित लक्ष्मणजी को उस पर्वत पर उगी हुई सजीवनी-बूटी से जिला सके। साहित्य मे ऐसे अनेक उज्ज्वल उदाहरण मिलते हैं जो भक्ति की शक्ति का परिचय देते है।

परन्तु भक्त की भक्ति का आधार है अनन्त शक्तिवत भगवान् जो अप्रतिम और अनुपम हैं। उनकी तुलना किसी से नही की जा सकती, उनकी समानता कोई नही कर सकता। वे हैं—'न तस्य प्रतिमास्ति'—वे अनुपम हैं। ऐसे प्रभु के उपासक भी अजर-अमर हो जाते हैं। इसीलिए प्रभु का वचन है 'न मे भक्त प्रणश्यति'—मेरे भक्त का विनाश नही होता। ऐसे अनन्त शक्तिवत, शातसुधारस जलनिधि भगवान् को बताने वाले सुगुरु हैं। इसीलिए गुरु पद महिमाशाली है। सद्गुरु की महिमा समस्त धर्मों मे बताई गई है।

भक्त की चिर अभिलाषा रहती है कि वह अपने गुरुवर के चरण-कमलो मे नित्य वसे ।

ऐसे ही अभिलाषी थे गुरुभक्त शिष्यरत्न श्री ललितविजय जी महाराज । सवत् १९६२ की बात है । पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का चातुर्मास लुधियाना मे था । चौमासे मे आचार्यदेव अस्वस्थ हो गये । बीमारी मे भी वे व्याख्यान देते रहे । दूर-दूर से भक्तजन दर्शनार्थ आते और उनका वचनामृत पीकर चले जाते । यह क्रम नित्य चलता रहता । विश्राम नही मिलने के कारण पूज्य श्री की बीमारी अधिक बढती गई । जब बीमारी का समाचार मुनि श्री ललितविजय जी को मिला, तब वे व्याकुल हो गये । उस समय उनका चातुर्मास बीकानेर मे था । चातुर्मास समाप्त होते ही वे मानो पवनवेग से पूज्य गुरुदेव की सेवार्थ चल पडे । खाने-पीने की भी सुध न रही । यात्रा लम्बी थी, रात-दिन यही चिंता सताती कि पूज्य गुरुदेव का स्वास्थ्य न जाने कैसा होगा ? मैं दूर हूँ, सेवा मे भी वचित । मैं कितना भाग्य-हीन हूँ ? आँखो के सामने पूज्य गुरुदेव ही छाये रहते । लम्बी यात्रा के पश्चात् जब वे पूज्य गुरुदेव के पास पहुँचे तब उन्हे जो आनन्द हुआ वह अकथनीय है । पूज्य गुरुदेव ने अचानक प्रिय शिष्यरत्न को जब अपने चरणो मे देखा तब उन्हे आश्चर्यमिश्रित आनन्द हुआ । उन्होने गद्गद् स्वर मे पूछा 'अहो ! ललितविजय ! क्या उडकर यहाँ आये हो ।'

दिव्य चरणो से उठते हुए शिष्य-रत्न ने कहा 'कृपासागर ! बीमारी का समाचार सुनकर गोचरी-पानी, सब उड गया था । चौमासे मे आ नही सकता था । इन चरणो मे आने के पश्चात् ही शान्ति मिली है । आपका स्वास्थ्य गिर गया है, इससे मुझे चिन्ता हो रही है ।'

—

१६

प्रेरक प्रसंग

भक्ति की शक्ति असीम होती है। उस शक्ति का अखड स्रोत है–श्रद्धा। सद्देवगुरुधर्म के प्रति निर्मल श्रद्धा से अजय शक्ति प्राप्त होती है जिससे नवनिद्धि और अष्टसिद्धि सहज ही उपलब्ध होती है। परन्तु श्रद्धावान् भक्त उनकी चाहना नही करता, वह अनन्त-कृपालु भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि वह जन्म-जन्मातर भक्ति रग मे रगा रहे। यही उसकी अभिलाषा रहती है।

श्री हनुमानजी की अपने आराध्यदेव भगवान राम के प्रति अनन्त श्रद्धा थी, फलस्वरूप वे पर्वत-खण्ड को भी उठा कर ले आये और लका मे मेघनाद की शक्तिबाण से मूर्च्छित लक्ष्मणजी को उस पर्वत पर उगी हुई सजीवनी-बूटी से जिला सके। साहित्य मे ऐसे अनेक उज्ज्वल उदाहरण मिलते हैं जो भक्ति की शक्ति का परिचय देते है।

,परन्तु भक्त की भक्ति का आधार है अनन्त शक्तिवत भगवान् जो अप्रितम और अनुपम हैं। उनकी तुलना किसी से नही की जा सकती, उनकी समानता कोई नही कर सकता। वे हैं—'न तस्य प्रतिमास्ति'–वे अनुपम हैं। ऐसे प्रभु के उपासक भी अजर-अमर हो जाते है। इसीलिए प्रभु का वचन है 'न मे भक्त प्रणश्यति'–मेरे भक्त का विनाश नही होता। ऐसे अनन्त शक्तिवत, शातसुधारस जलनिधि भगवान् को बताने वाले सुगुर हैं। इसीलिए गुरु पद महिमाशाली है। सद्गुरु की महिमा समस्त धर्मों मे बताई गई है।

भक्त की चिर अभिलाषा रहती है कि वह अपने गुरुवर के चरण-कमलो मे नित्य बसे ।

ऐसे ही अभिलाषी थे गुरुभक्त शिष्यरत्न श्री ललितविजय जी महाराज । सवत् १६६२ की बात है । पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का चातुर्मास लुधियाना मे था । चौमासे मे आचायदेव अस्वस्थ हो गये । बीमारी मे भी वे व्याख्यान देते रहे । दूर-दूर से भक्तजन दर्शनाथ आते और उनका वचनामृत पीकर चले जाते । यह क्रम नित्य चलता रहता । विश्राम नही मिलने के कारण पूज्य श्री की बीमारी अधिक बढती गई । जब बीमारी का समाचार मुनि श्री ललितविजय जी को मिला, तब वे व्याकुल हो गये । उस समय उनका चातुर्मास बीकानेर मे था । चातुर्मास समाप्त होते ही वे मानो पवनवेग से पूज्य गुरुदेव की सेवार्थ चल पडे । खाने-पीने की भी सुध न रही । यात्रा लम्बी थी, रात-दिन यही चिंता सताती कि पूज्य गुरुदेव का स्वास्थ्य न जाने कैसा होगा ? मैं दूर हूँ, सेवा से भी वचित । मै कितना भाग्य-हीन हूँ ? आँखो के सामने पूज्य गुरुदेव ही छाये रहते । लम्बी यात्रा के पश्चात् जब वे पूज्य गुरुदेव के पास पहुँचे तब उन्हे जो आनन्द हुआ वह अकथनीय है । पूज्य गुरुदेव ने अचानक प्रिय शिष्यरत्न को जब अपने चरणो मे देखा तब उन्हे आश्चयमिश्रित आनन्द हुआ । उन्होने गद्गद् स्वर मे पूछा 'अहो ! ललितविजय ! क्या उडकर यहाँ आये हो ।'

दिव्य चरणो से उठते हुए शिष्य-रत्न ने कहा 'कृपासागर ! बीमारी का समाचार सुनकर गोचरी-पानी, सब उड गया था । चौमासे मे आ नही सकता था । इन चरणो मे आने के पश्चात् ही शान्ति मिली है । आपका स्वास्थ्य गिर गया है, इससे मुझे चिन्ता हो रही है ।'

'चिंता मत करो। यह तो शरीर का धर्म है। मैं शीघ्र स्वस्थ हो जाऊँगा। अब तुम भी मेरे पास हो। तुम्हारी सेवा से क्या बीमारी रह सकती है?' पूज्य आचार्यदेव ने मुस्कराते हुए कहा।

पूज्य आचार्यदेव के वचनामृत से शिष्य रत्न पुलकित हो गये। वे आनन्द की अमृतवर्षा से भीगने लगे।

पूज्य आचार्यदेव पूर्ण स्वस्थ हो गये। वे पट्टी, जंडियाला गुरु, अमृतसर होते हुए रामनगर पधारे। वहाँ गुरुभक्त लाला जगन्नाथ ने खूब भक्ति की। लालाजी के पास नीलम और पन्ना की स्तंभन पार्श्वनाथ भगवान् की सुन्दर प्रतिमा थी। उस अद्वितीय प्रतिमा के दर्शन कर सबको अतिशय आनन्द हुआ। उस चमत्कारी मूर्ति के दर्शन से मुनिश्री ललितविजय जी महाराज भावविभोर हो गये। उस समय उन्होंने मस्त होकर जय जयवन्ती रागिनी में पार्श्वप्रभु का सुन्दर स्तवन गाया—

पार्श्व प्रभु का दर्श सुहंदा, प्रभु-दर्शन से होत आनंदा ।।पा० अचली
वेधक वेधकता को जाने, और नहीं तस स्वाद लहंदा।
तिम प्रभु दर्शन का फल जाने, दर्शक भवी नहीं अभवी गहंदा।पा।१
पर उपकारी जग हितकारी, जिनवर केवल ज्ञान दिवंदा।
विचरता परिवार सहित प्रभु, कनक कमल पर पाय ठवंदा।पा।२
सुरजल बुंद कुसुम वरसावे, चामर सिर पर छत्र धरंदा।
तर मारग में जाता नमता, तारण भवि उपदेश करंदा।पा।३
पैंतीस गुणवाणी प्रभुधारी, नरनारी सुर अपछर वृंदा।
प्रभु आगल नाटक करे सुंदर, अवनी तल पावन जिन चन्दा।पा।४
आये कारण अंत चउमासा, तीर्थ शिखर सम्मेद गिरींदा।
श्रावणसुदी आठम करी अनशन, एक मास नग तेती मुनींदा।पा।५
काउसग्ग मुद्रा शिव सुख पाये, सादि अनंत अज अचर जिनंदा।
आतम आनन्द चिदघन राशि, वल्लभ वीर वचन सुख कंदा।पा।६

मधुर सगीत से पूज्य आचार्य देव व अन्य मुनिराज पुलकायमान हो गये। सभी श्रोतागण आनन्द मे झूमने लगे। ऐसा था उनका सुरीला कठ।

सवत् १६६५ फाल्गुन वदि १ को पूज्य गुरुदेव जयपुर पधारे। यहा तीन पुण्यात्माओ की दीक्षा पूज्य गुरुदेव के करकमलो से होने वाली थी। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेव के शिष्य रत्न पन्यास श्री ललितविजय जी भी पजाब से जयपुर पधारे। फिर क्या था ? नित प्रतिदिन पूजोत्सव का ठाठ ही निराला था। प्रतिदिन अलग-अलग मदिरा मे पूजा पढाई जाती थी जिसमे मुनिमडल विशेष रस लेता था। पन्यास श्री के सान्निध्य मे पूजा का रागरग इतना भव्य रहता कि मदिर मडप खचाखच भर जाते। उस पूजोत्सव का वर्णन करते हुए फूलचन्द हरिचद दोशी 'युगवीर आचार्य द्वितीय भाग' मे लिखते हैं

'पन्यास श्री ललितविजय जी का कठ इतना मधुर था मानो मोहिनी मत्र। स्वर इतना मधुर और मोहक कि श्रोतागण मत्रमुग्ध सप की तरह झूमने लगते और आनन्द रस मे भीग जाते। तीन चार घटे ऐसे बीतते जैसे एक घडी ही बीती हो।'

१७

मरुधरोद्धारक तथा प्रखर शिक्षा-प्रचारक

पूज्य ललितसूरि जी महाराज कर्मयोगी की तरह सत्कर्म मे सदा प्रवृत्त रहते थे। उनका मार्ग स्वच्छ और सुस्पष्ट था। वह साफ-सुथरा मार्ग परम पूज्य गुरुदेव का बताया हुआ मार्ग था, इसलिए भटकाव का प्रश्न ही नही था। जीवन की महान् यात्रा निर्विघ्न थी, पूज्य गुरुदेव की शीतल छाया मे चलना आनन्ददायक था। अधेरा मिट चुका था, रवि प्रकाश छिटक गया था। उस उजाले मे दिव्य यात्री आनन्दमग्न चल रहा था। वह उजाला केवल बाहर नही था, वह भीतर भी था। उस जाग्रति मे कर्मयोगी की मस्ती ही निराली थी। ऐसे जाग्रत यात्री का वर्णन योगिराज श्रीमत् चिदानन्दजी महाराज ने अपने एक गीत मे इस प्रकार किया है

जाग रे बटाऊ अब, भई भोर वेरा।
भया रवि का प्रकाश,
कुमुदहु थए विकास।
गया नाश प्यारे मिथ्या,
रैन का अधेरा॥ जाग रे० ॥१॥
सूता केम आवे घाट,
चालवी जरूर बाट।
कोई नाही मित्त,
परदेश मे ज्यु तेरा॥जाग रे० ॥२॥
अवस बीत जाय,

पीछे पछतावो थाय।
चिदानन्द निहचें,
ए मान कहा मेरा ॥ जाग रे० ।३।

—राग भैरवी

यह जाग्रत कर्मयोगी मरुभूमि मे उन फुलवारियो को सीच रहा था जिनका पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी ने वीजारोपण किया था। श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यालय, वरकाणा तथा श्री पार्श्वनाथ उम्मेद जैन बालाश्रम, उम्मेदपुर का लालन पालन उन्होने जिस कौशल से किया, वह अद्भुत है। ये फुलवारियाँ खिल गई, उनके अनेक फूल सुगन्ध बिखेरने लगे। समाज मे सुगध फैली। यही नही, कही वाचनालय खुले, कही कन्याशालाएँ स्थापित हुई, कही पाठशालाएँ निर्मित हुई। इन शिक्षण सस्थाओ का विकास हुआ पूज्य आचाय श्रीमद् विजयललित सूरीश्वर जी महाराज के अथक प्रयास से।

जब अधकार मिटने लगा और प्रकाश की सुनहली किरणें फैलने लगी, तब समाज के प्रबुद्ध लोग उपकारी के प्रति आभार प्रकट करने के लिए उत्सुक हो गये। सन्त तिरुवल्लुवर द्वारा रचित तिरुक्कुरल नामक ग्रन्थ मे ठीक ही कहा है—

जिसने दुख मिटा दिया, उसका स्नेह स्वभाव।
सात जन्म तक भी स्मरण, करते महानुभाव ॥
भला नही है भूलना, जो भी हो उपकार।
अच्छा है झट भूलना, कोई भी अपकार ॥

(मूल तमिल भाषा मे)

और वह स्वर्ण अवसर आया जब श्री बामणवाडा तीर्थ (सिरोही जिलान्तगत) मे 'अखिल भारतवर्षीय पोरवाल सम्मेलन' का आयोजन हुआ।

इस महा सम्मेलन का आँखो देखा हाल 'आदर्श जीवन' पृष्ठ ३४६ पर अत्यन्त रोचक शैली मे लिखा हुआ है, जिसे मैं यहाँ पर उद्धृत करता हूँ

"इस सम्मेलन के अवसर पर योगिराज श्री विजयशान्तिसूरि जी भी पधारे थे। इनके साथ वार्तालाप करके आपको (आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि जी को) बहुत प्रसन्नता हुई। आचार्य श्री ने सम्मेलन मे ज्ञान प्रचार की आवश्यकता पर जोर दिया और पोरवाल समाज की उन्नति के लिए रचनात्मक कार्य की आवश्यकता बताई। युवको से आपने कहा

"बडी-बडी बातो से कुछ नही होगा। यदि सचमुच तुम समाज की उन्नति चाहते हो तो चौबीस घंटो मे से कम से कम दो चार घंटे तो समाज-सेवा में देने ही होंगे।"

योगिराज श्रीविजयशान्ति सूरिजी ने सम्मेलन को आशीर्वाद दिया। इस सम्मेलन मे तीस-पैंतीस हजार मनुष्य आये थे। एक दिन कुछ प्रमुख श्रावक आपके पास आये और निवेदन करने लगे "आपने हमारे सम्मेलन को सफल बनाने मे बहुत मेहनत की है। आपकी प्रेरणा से ही हम यह सम्मेलन कर सके हैं। पन्यासजी महाराज श्री ललितविजय जी ने बहुत परिश्रम किया है। उनका श्रम तो इस मरुभूमि मे चमत्कार ही प्रमाणित हुआ है। और योगिराज का आशीर्वाद भी हमारे लिये महान् वस्तु है।"

पूज्य आचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी ने कहा "भाग्यवानो! समाज के उत्कर्ष के लिये और आत्म-कल्याण के लिये ही तो हमने यह वेश धारण किया है। इस जीवन मे जितने आत्म-कल्याण और समाज-कल्याण के काय हो सकें उतने करना हमारा कर्त्तव्य है। योगिराज से भेंट कर मुझे बहुत आनन्द हुआ है और पन्यासजी श्री ललितविजय जी के काम तो हमारी अनेक पीढियाँ भी नही भूलेंगी।"

उन लोगो ने कहा हमे आप तीना को पद अर्पण कर सम्मान करना है। हमे स्वीकृति दीजिये।

आपने कहा तुम योगिराज को सम्मानित पद अपण करो, इसमे हमारी पूर्ण समति है, पर मुझे और ललितविजयजी को ता आचार्य और पन्यास के महामूल्यवान पद मिले हुए हैं। और पदो मे क्या विशेपता रखी है? हमारी शोभा तो इसी मे है कि हम आत्म-कल्याण और समाज-कल्याण के कार्यो का सतत करते रह।

वे वोले हम निर्णय करके आये हैं। समति दीजिये। पदवी अर्पण करने का काय होने पर ही सम्मेलन की पूर्णाहुति होगी।

आप वोले जैसी सघ की इच्छा।

दूसरे दिन हजारो लोगो के सामने निम्नलिखित पद अपण किये गये

१ पू आचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज को –कलिकाल कल्पतरु एव अज्ञान-तिमिर-तरणि।

२ पन्यासजी श्री ललितविजय जी को–मरुधरोद्धारक एव प्रखर शिक्षा-प्रचारक।

३ योगिराज श्रीमद् विजयशान्ति सूरीश्वर जी महाराज को–अनन्त जीव प्रतिपाल, योगीन्द्र चूडामणि तथा राज-राजेश्वर।

तीनो महापुरुषो ने सम्मेलन को आशीर्वाद दिया और सम्मेलन जय जयकार के मगलघोप से समाप्त हुआ।

यह शुभ कार्य स १९९०, वैशाख वदि, ता० १३-४-१९३३ गुरुवार को सानन्द सम्पन्न हुआ।

१८

सूर्य-चंद्रमा

[पन्यास, उपाध्याय आदि पदवियों का वर्णन]

मनुष्य जीवन का आभूषण है उत्तम चारित्र। मनुष्य जीवन हीरे के समान है, उसकी कान्ति है शुद्ध चारित्र। साधुजनो का दिव्यतम गुण है निर्मल चारित्र। पूज्य मुनिश्री ललितविजयजी महाराज के अन्तर्जीवन मे प्रवेश करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वे महापुरुष थे। विनय गुण से उनके जीवन का उत्तरोत्तर विकास हुआ। सेवा से उनके सद्गुण खिल गये। फलस्वरूप श्री सघ ने उनको गुरुभक्त, मरुधरोद्धारक, प्रखर शिक्षाप्रचारक आदि अलकरणो से विभूषित किया। ये अलकरण उनकी विनयशीलता और समाज सेवा के द्योतक हैं परन्तु साधुजीवन की महिमा और गरिमा के प्रतीक हैं—पन्यास पद, उपाध्याय पद, आचार्य पद आदि। पूज्य मुनिश्री के कर कमलो द्वारा अनेक धार्मिक शुभ कार्य हुए, नव मन्दिरो का निर्माण हुआ, प्रतिष्ठा एव अजनशलाकाएं पूर्ण हुई तथा उपधान तपादि शुभकाय भी सोल्लास सम्पन्न हुए। उनकी धम-निष्ठा एव उत्तम चारित्रिक गुणो से प्रभावित होकर श्री सघ ने बाली नगरी मे सम्वत् १९७५ कार्तिक वदि पचमी के शुभ दिन पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के सानिध्य मे उनको पन्यास पद प्रदान किया।

पन्यास श्री ललितविजय जी की गुण-सुगन्ध फैलने लगी। प्रखर शिक्षा प्रचारक के रूप मे आपकी ख्याति व्याप्त हो चुकी थी। अनेक धार्मिक कार्य आपके कर कमलो द्वारा सम्पन्न हो चुके थे और

हो रहे थे। मरुभूमि के वासी पूज्य पन्यास जी की सगीतकला, धमप्रेम, समाजसेवा और गुरुभक्ति से प्रभावित थे, अत वे कोई न कोई मागलिक काय का शुभारम्भ करने के लिए उनको भाव-भक्ति से आमन्त्रित करते थे। पूज्य पन्यास श्री ऐसे शुभ कार्यों मे विशेष रस लेते थे।

बीसलपुर वासी पूज्य पन्यासश्री की उपस्थिति का क्यो न लाभ लेते ? विक्रम सम्वत् १९९१ वैशाख शुक्ला ३ से वैशाख शुक्ला ११ व मगल-दिवस बीसलपुर ग्राम के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगे। बीसलपुर के श्री धर्मनाथ स्वामी के भव्य जिनालय का जीर्णोद्धार हो चुका था। भगवान धमनाथ स्वामी की भव्य प्रतिमा को, जो सम्वत् १४९९ मे स्थापित हुई थी, नव स्थापना शिल्पशास्त्र की दृष्टि मे आवश्यक प्रतीत हुई। फलस्वरुप सम्वत् १९९१ वैशाख शुक्ला १०, सोमवार को अजनशलाका प्रतिष्ठा का शुभ मुहूर्त निकाला। जगद्गुरु, योगीन्द्र चूडामणि आचाय सम्राट श्रीमद् विजयशान्तिसूरीश्वर जी महाराज तथा मरुधरोद्धारक, प्रखर शिक्षा-प्रचारक गुरुभक्त पन्यास श्री ललितविजयी महाराज को इस शुभ कार्य को सम्पन्न करने के लिए बीसलपुर श्री सघ ने आमन्त्रित किया। उस अवसर पर प्रसिद्ध समाजसेवक लोकमान्य श्री गुलाबचदजी ढड्ढा, एम ए जयपुर निवासी के सुप्रयत्न से श्री श्वेताबर प्रातिक कान्फ्रेम का अधिवेशन भी हुआ था जिसमे देशभर के अनेक गणमान्य महानुभाव पधारे थे। उन विशिष्ट अतिथियो मे बाबू निर्मलकुमार सिंहजी (अखिल भारतीय जैन श्वेताबर कान्फ्रेंस के प्रमुख) अजीमगज, श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा एम ए जयपुर, श्री सुमेरचन्द जी मूथा जोधपुर, श्री जवाहरलाल लोढा (सम्पादक श्वे० जैन) आगरा, श्री ताराचन्द जी दोशी, सिरोही, श्री मूलचन्द जी छजमल जी सादडी, श्री रिखवदास मरदारमल जी रानी, श्रीपोपट लाल [illegible]स शाह, बराची,

श्री नेमीचन्द जी गोलेच्छा फलोदी आदि उल्लेखनीय हैं। इस समारोह के स्वागत समिति के अध्यक्ष थे श्रीप्रभुतमल जी देवीचद जी।

श्री श्वेताम्बर प्रान्तिक कान्फरेन्स का अधिवेशन सवत् १९९१, वैशाख शुक्ला प्रथम ७, द्वितीय ७, व अष्टमी, गुरु, शुक्र व शनि तदनुसार तारीख ९,१०, ११ मई, सन् १९३५ को हुआ।

कार्यक्रमानुसार श्री महावीर जैन गुरुकुल बामणवाडजी के विद्यार्थियो ने मगलाचरण गाया। तत्पश्चात् आचार्य सम्राट श्री १००८ श्री विजय शान्ति सूरीश्वर जी महाराज ने उद्घाटन उपदेश दिया जिसको मैं अक्षरश प्रस्तुत करता हूँ

'यहाँ जिस शुभ काय के लिए सब महानुभाव एकत्रित हुए हैं वह किसी से छुपा नही है। मेरा तो विश्व समाज के प्रति प्रेम रहा हुआ है। श्री प्रभु महावीरदेव का विश्व मे प्रेम स्थापित करने का उपदेश है। श्री दशवैकालिक सूत्र मे इसका उल्लेख आप देख सकेंगे, उसमे स्पष्ट है कि तमाम प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान देखो। श्री गीता मे भी यही उपदेश है। वेदान्त मे भी एक माला के मणके के समान सब आत्मा को बताया है। अथर्ववेद भी इसकी पुष्टि करता है। जीसस क्राईस्ट ने भी "प्रेम ही ईश्वर है" का सिद्धान्त फैलाया है। इस प्रकार विश्वप्रेम के सिद्धान्त का सवत्र मान्य रखा गया है। 'जग बधव, जग सत्थवाह' आदि से क्या समझना ? (तालिया) श्री रामकृष्ण परमहस के समान हम सब मे पवित्र भावनाओ का सचार होना चाहिये। आप सब दीन बन्धु, विश्व बन्धु बन जाओ, जन-कल्याणाथ जगत् मे रहो। 'शिवमस्तु सव जगत ' की भावना को व्यवहार रूप दो।

शास्त्र मे 'पढम नाण तओ दया,' 'सा विद्या या विमुक्तये' आदि ज्ञान की श्रेष्ठता के सूत्र विद्यमान है। इस ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा आप इस प्रदेश के हानिकारक रिवाज बन्द करें। द्रव्य, क्षेत्र,

काल, भाव का विचार करें। इस प्रदेश मे बाल लग्न, वृद्ध लग्न, कन्या विक्रयादि रिवाज घर कर बैठे हैं। जैन समाज के लिए ये रिवाज लाछनप्रद हैं। आप सम्मिलित हो इनको देश से निकाल दें यही मेरी भावना और सन्देश है। विश्व प्रेम जगाओ। श्री महावीर के जीवन को सीखो, जाति अभिमान न रखो, श्री महावीर का धम वीरो का धर्म था। कायरो के पास जाने से उसकी क्या कीमत रहे ? जरा विचार करो।

[पूज्य आचार्य सम्राट ने श्रीज्ञात सूत्र, श्री रायपसेणी सूत्र, श्री शान्तिनाथ चरित्र आदि मे से अनेक सूत्र फरमा कर मेतार्य आदि के दृष्टान्त दे 'विश्व प्रेम' प्रचार के लिए आग्रह किया। आपश्री ने जाति की विशेषता नही, पर 'कर्त्तव्य' की विशेषता बता नारद, वाल्मीकि, वशिष्ठ मुनि, रोहीदास आदि के कार्यों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया था। अत मे आपश्री ने फरमाया था कि जगत् मे 'हे आत्म बन्धुओ ! यहां एकत्रित होकर कायम के लिए कुछ काम करके जाना, कुछ करके जाना।

—ॐ शाति, ॐ शाति, ॐ शाति]

तत्पश्चात् मरुधरोद्धारक पन्यास श्री ललितविजयजी महाराज ने सुमधुर वाणी से उपदेश दिया। आपश्री ने सब दर्शनो के प्रति समता भाव वाली सुन्दर कविता सुनाई। श्रोतागण रस मग्न हो गये। फिर आपने 'विद्या' प्रचार के लिए उपदेश दिया। आपश्री ने कहा उस विद्या का नाम विद्या नही जिससे गुलाम बने—वह सद्विद्या नही कही जा सकती। विद्या तो मुक्ति के लिए ही होती है और जिस विद्या से मुक्ति प्राप्त की जा सके, वही विद्या। यह अच्छी तरह समझ कर इस प्रदेश की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। मारवाड, गोडवाड मे पहिले विद्या और उसके साधन कम थे। आज मारवाड मे कुछ प्रमाण मे वह स्थिति सुधरने लगी है, पर अब

भी बहुत करने की आवश्यकता है। जगत के समक्ष समाज को अपना मुख उज्ज्वल रखने के लिए 'सद्‌विद्या' का प्रचार जोरों से करना आवश्यक है।

समाज की कुरीतियों की आलोचना करते हुए आपश्री ने फरमाया बाल-विवाह, कन्या विक्रय, दहेज प्रथा आदि क्षय रोग हैं जो समाज के शरीर को खा रहे हैं। भाग्यशालियो! इनको समाप्त करो जिससे समाज स्वस्थ बन सके। विद्या के दीप जलाओ, अंधकार अपने आप भाग जाएगा।

उपर्युक्त पूज्य महा मुनिवरों के उपदेशामृत पीकर जनता हर्ष-विभोर हो गई। तत्पश्चात् स्वागताध्यक्ष शाह भभूतमल देवीचन्दजी, जगतशेठ फतहचन्दजी—कान्फरेंस के प्रमुख, लोकमान्य श्री गुलाबचन्दजी ढड्ढा आदि के प्रेरक भाषण हुए और अधिवेशन में समाज सुधार सम्बन्धी अनेक प्रस्ताव पारित हुए।

पदवी प्रदान समारंभ—सम्वत् १९९१, वैशाख शुक्ला १० सोमवार। प्रात काल की मंगलवेला में जगद्‌गुरु, योगीन्द्र चूडामणि, आचार्य सम्राट श्रीमद् विजयशांति सूरीश्वरजी महाराज के कर-कमलों द्वारा श्री धर्मनाथ स्वामी के जिनालय की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न होने वाला है। समीप और दूर-दूर से दर्शनार्थी पधारे हुए हैं। बीसलपुर नगरी सजाई गई है। तोरण-द्वार बनाये गये हैं। भवन रंग-बिरंगे अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्रपुरी हो। उस मंगल प्रसंग पर श्री संघ ने पूज्य मुनिवर्यों को पदवी प्रदान करने का निश्चय किया।

"इस निश्चय की गंध उक्त महामुनिवर्यों के कानों तक पहुँचते ही आपने आगेवानों को स्पष्ट कह दिया था कि पदवी का भार हम स्वीकार करने को बिल्कुल तैयार नहीं हैं और संघ इस कार्य को हाथ न धरे। पर श्री संघ कब मानने लगा?

बीसलपुर मे हजारो स्त्री-पुरुषो की मेदनी एकत्रित होना, एक छोटे से ग्राम मे सारी सख्या (करीब २२०००) का समावेश हो जाना, उनके लिए सर्वप्रकार का समुचित प्रवन्ध होना, किसी भी प्रकार की किसी को कष्ट-व्याधि का न होना-इन महात्माओ के पुण्य-प्रताप का ही फल था। पानी के लिए प्रारभ मे लोगो को चिंता होने लगी, पर जब यह बात योगिराज के कानो तक पहुँची, तब ही से बीसलपुर के पास मे सूखी रेत से भरी हुई नदी मे-जिसमे पानी का नामोनिशान तक भी नही था-पानी बह जाने लगना और प्रतिष्ठादि का सर्व काय पूर्ण हो जाने के पश्चात् पानी अदृश्य होना -सख्त गरमी मे भी किसी भी प्रकार का उपद्रव न होना, बल्कि हमेशा बादलो की छाया, इन्द्र का किया हुआ पानी का छिडकाव, इन्द्र की महान् गरजती हुई और चमकती हुई सवारी होते हुए शान्ति का कायम रहना इत्यादि बाते सब उक्त महामुनिवर्यों के ही पुण्य का प्रभाव माना जा सकता था। पन्यासजी महाराज श्री ललितविजय महाराज जी के कितने ही वर्षो के मारवाड आदि प्रातो के सुधारणार्थ अविश्रान्त परिश्रम आत्म भोगो से कौन अपरिचित है ? श्री सघ ने तो निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो योगिराज को योगेन्द्र चूडामणि, युग प्रधान और पन्यास जी महाराज को उपाध्याय पद से विभूषित कर कृतकृत्य होना।"

पूज्य पन्यास जी श्री ललितविजय जी महाराज इन पदवियो मे सदा दूर रहते थे। उनकी नि स्पृहता का वर्णन 'श्री मारवाड प्रातिक जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बीसलपुर अधिवेशन रिपोर्ट' पृष्ठ ६८, ६६, ७० और ७१ पर इस प्रकार किया गया है पन्यास जी ललितविजय जी महाराज ने तो यहाँ तक साफ-साफ कह डाला था कि मेरे गुरुदेव आचार्य महाराज विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज की तथा प्रवर्तक श्री कातिविजयजी महाराज की जब तक आज्ञा न मिलेगी मैं इस पदवी का कभी भी नही स्वीकारू गा।

पन्यासजी महाराज के इस कथन को सुन श्री सघ ने खानगी मे (पन्यासजी महाराज की जानकारी के विना) बवई आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी के पास श्री भन्साली सम्पतराज जी को और पाटण प्रवर्तक श्री कांतिविजय जी महाराज के पास कोठारी किशनचन्द्र जी ने अनुमति प्राप्त करने के लिए रवाना किए। इन दोनो बन्धुओं के साथ उपस्थित श्री सघ की तरफ से आगेवान व्यक्तियो की सहीवाला एक पत्र भेजा गया था जिसके जवाब मे प्रवर्तक जी महाराज श्री कांतिविजयजी महाराज का नीचे मुताबिक पत्र मिला।

(श्री प्रवर्तकजी का पत्र)

॥ जयति वीरस्य शासनम् ॥

पाटण सागर का उपाश्रय, ता ११-५-३५

तत्र मु वीसलपुर मध्ये धर्मात्मा धर्म प्रभावक श्री श्वेतांबर जैन सघ—श्रीयुत फतहचन्दजी, श्रीयुत बाबूजी, श्रीयुत निर्मलकुमारजी, श्रीयुत गुलाबचन्दजी ढड्ढाजी आदि योग्य धर्मलाभ। यहाँ पर धर्म प्रभाव से हम सभी आनन्द मे हैं। आप भी आनन्द मे होंगे। विशेष श्रीयुत पन्यासजी श्री ललितविजयजी को आप श्री सघ उपाध्याय पद देने के लिए उत्सुक हैं तो हम उसके लिए सम्मत हैं। परन्तु आचार्य महाराज की उसके लिए आज्ञा ली जाय। आप श्री सघ आचार्य महाराज की सम्मति लेकर काम करना। उनकी सम्मति मे ही हमारी सम्मति आ जाती है। धर्म कार्य मे आदर रखना। देव-यात्रा मे याद करना।

द प्रवर्तकजी महाराज की आज्ञा से
पुण्य वि का धर्मलाभ।

मु बंई से आचार्यदेव श्री विजयवल्लभ सूरिजी ने भी यही कहलाया कि 'श्री सघ की जैसी इच्छा। मैं सहर्ष स्वीकृति देता हूं।'

सवत् १९९१ वैशाख शुक्ला १० को बीसलपुर (स्टेशन जवाई बांध) में परम पूज्य मुनि श्री ललितविजयजी महाराज को उपाध्याय पद से विभूषित किया गया। पूज्य उपाध्यायजी महाराज बीसलपुर में अपने शिष्य परिवार सहित।

वैशाख शुद १० का दिन भी आ पहुँचा। प्रात काल से प्रतिष्ठादि की सर्व तैयारिया हो चुकी थी। मन्दिरजी के सामने हजारो स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो चुके थे। श्रीसघ ने जगतशेठ के केम्प पर डेप्युटेशन भेजा और जगतशेठ श्री फतहचदजी घेलडा को पदवी प्रदान करने की विनती की। जगतशेठ सा भी पधारे।

सारा मानव समुदाय बस अब एक ही धुन मे था कि कब योगिराज और पन्यासजी महाराज प्रतिष्ठा के लिए यहा पधारे और कब हम पदवी प्रदान करे। समय १०-३० अनकरीब आ गया। उक्त महात्माओ का पधारना न हुआ। आगेवान कई वख्त आपको ढू ढ आए पर कुछ पता न मिला। अत मे उक्त महात्माओ के दर्शन मदिरजी मे हुए। आगेवानो ने विनती की कि कृपया मण्डप मे (मदिर के बाहर) पधार कर उपकृत करें। महात्माओ ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। लगभग दुपहर होने आई। श्री सघ ने ठान लिया कि जब तक पदवी प्रदान न हो जाय जीमण (भोजन) न लेंगे।

बडी मुश्किल मे गुरुदेव ने मदिर के बाहर पधारने की विनती स्वीकार की। श्री सघ ने पद स्वीकार करने की गद्‌गद् वाणी से विनती की। गुरुदेव ने फरमाया कि मैं जरा अपने स्थान पर हो आऊ। गुरुदेव वहाँ से विदा हुए। कहा पधारे, पता नही। लगभग १॥ घटे तक अदृश्य रहे। आपश्री के स्थान पर नही थे। जनता आश्चर्य मुग्ध हो गई।

पन्यासजी महाराज भी न मालुम कहा विराजे हुए रहे, पता नही चला।

यह तो श्री सघ की कसौटी थी। लगभग १ घटे बाद फिर श्री सघ के आगेवान, गुरुदेव के स्थान पर पहुँचे तो पता चला कि गुरुदेव तो मदिर मे पधारे हुए हैं। गुरुदेव का आगमन मदिर मे किस रास्ते से कब हुआ किसी को पता न चला (जो कि मदिर के दो रास्ते ही है और उस समय तो दोनो रास्तो पर हजारो आदमी

खडे हुए थे) । हताश हुए आगेवानो मे आशा की किरण प्रकट हुई । सब मदिर मे पहुँचे । योगिराज मौजूद पाये परन्तु पन्यासजी महाराज तो न मालुम किधर रम गये । श्री योगिराज ने फरमाया कि सब क्रिया मदिर मे पन्यासजी महाराज के हाथ से होगी इस वास्ते उनको तलाश करके शीघ्र लाओ । इस पर चारो तरफ कई व्यक्ति दौड पडे और पन्यासजी महाराज को लेकर आये । पन्यासजी महाराज श्री योगिराज के पास आ बैठे । योगिराज और पन्यासजी महाराज रग मडप के पास की बाजू मे विराजे हुए 'सूर्य-चन्द्रमा' के समान दिखाई दिये ।

श्री सघ व आगेवानो ने मन्दिर मे पहुँच जबरदस्ती से चद्दर ओढा कर वासक्षेप अर्पण कर योगिराज श्री शातिसूरीश्वरजी को "योगेन्द्र चूडामणि युग प्रधान" और पन्यास जी ललितविजयजी महाराज को "उपाध्याय" पद समर्पित कर जय-जयकार से मदिर गु जा दिया । सोने की अगूठी, गिन्नियाँ, रुपये आदि न्योछावर कर उडाये गये । सच्चे मोतियो का स्वस्तिक किया गया । लगभग १॥-२ घण्टे तक महात्माओ को श्री सघ का प्रत्येक व्यक्ति वासक्षेप अर्पण कर चरणों मे वदन करता हुआ अपने आपको कृतकृत्य मानता था ।

तत्पश्चात् विधि-विधान सहित मदिरजी की अजनशलाका प्रतिष्ठा का मागलिक कार्य सोल्लास सम्पन्न हुआ ।

सम्वत् १९९७, मगसर सुदि ११ को योगिराज, आचार्य सम्राट श्रीमद् विजयशातिसूरीश्वर जी तथा मरुधरोद्धारक पूज्य आचार्य श्री विजयललितसूरीश्वर जी के कर कमलो द्वारा उम्मेदपुर स्थित श्री अमीझरा सहस्रफणा पार्श्वनाथ भगवान के जिनालय की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी ।

सम्वत् २००३ माघ शुक्ला १३ को विजय मुहूर्त मे पूज्य आचार्य श्री ललितसूरिजी महाराज के सान्निध्य मे सिरोही

जिलान्तगत कालन्द्री ग्राम मे नवनिर्मित भगवान् नमिनाथ जिनालय की भव्य प्रतिष्ठा पूर्ण हुई थी। ऐसे अनेक मागलिक कार्य पूज्य श्री के कर कमलो द्वारा सम्पन्न हुए। उनके सान्निध्य मे उपधानादि तप भी सानद पूर्ण हुए थे। सवत् २००० मे वरकाणा तीर्थ मे उपधान तप की आराधना हुई थी जिसकी प्रशसा आज भी है। ऐसे अनेक मागलिक शुभ कार्य पूज्य श्री की निश्रा मे सम्पूर्ण हुए।

नव दीक्षितो ने आपकी चरण-छाया मे शाति पाई, आपके परिश्रम से पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज द्वारा स्थापित शिक्षण सस्थाएँ फली-फूली, समाज मे अनेक शुभ कार्यो से आनद और उत्साह की दुदुभियाँ वजी, नई पीढी ने ज्ञान के प्रकाश मे आँखें खोली और रुढिवाद और कुरीतियो को जडमूल से उखाडने का सकल्प किया। मरुभूमि में नवजाग्रति का मगल प्रभात हुआ।

१६

आचार्य-पद

फूल मे सुगन्ध का वास है। पवन के प्रवाह से वह सर्वत्र फैलती है, परन्तु वह सुगन्ध कहाँ से आई ? सुयोग से। रवि किरणों से पुष्प खिलता है, एक-एक पखडी खिलकर सम्पूर्ण रूप से पुष्प को सुन्दर बना देती है। सूरज की सप्तरगी किरणो का प्रभाव कितना चमत्कारी है ? पर यह सच है कि वह सुगन्ध फूल के भीतर पहले से विद्यमान थी, रवि किरणो के सयोग से फूल खिला और सुगन्ध ही बिखरने लगी। मनुष्य जीवन का भी यही रहस्य है। अनेक उत्तम सस्कार मानव मन मे विद्यमान हैं, परन्तु उनके विकास के लिए सुयोग चाहिये। सम्यक् देव गुरुधर्म की शरण चाहिये। रवि तुल्य सुगुरु का सुयोग चाहिये।

पूज्य उपाध्याय महाराज श्री ललितविजयजी महाराज उन पुण्यात्माओ मे एक थे जिनको रवितुल्य पूज्य गुरुदेव का सुयोग मिला। उनकी निर्भय चरण-शरण मे उनका जीवन-पुष्प खिल चुका था, गुण सुगन्ध फैल रही थी। श्री सघ उनको स्नेह और श्रद्धावश अनेक अलकरण व पदवियो से विभूषित करने लगा। निरभिमानी उपाध्यायजी महाराज उन पदो को पूज्य गुरुदेव की आज्ञा और श्री सघ की श्रद्धाभक्ति के कारण ही ग्रहण करते थे। वे सदा यही कहते थे मेरे गुरुदेव कल्पतरु हैं। मैं उनके पदपद्मो का रजकण हूँ।

सवत् १९९३, चैत्र कृष्णा २, बुध के शुभ दिन पूज्य आचार्य-देव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज वडोदा से विहार कर शिष्य मडली सहित मियाँगाँव पधारे। बडे समारोह के साथ

मियाँगाँव वालो ने आपका स्वागत किया। प्रतिदिन अपने उपदेशामृत से आप मियाँगाँव वालो को तृप्त करते रहे।

एक दिन जब आप विहार करने की बातचीत कर रहे थे, तब श्रेष्ठि झवेरचन्द भाई आये और बोले

"हमारी गुरुभक्ति की कसौटी करना अभी बाकी तो नही है, पूज्य गुरुदेव !"

आपश्री बोले, "झवेरचन्द भाई ! यह तुम क्या करते हो ? तुम तो पूरे गुरुभक्त हो। इस छोटे से गाव मे भी तुमने हमारे लिये सब तरह की व्यवस्था कर रखी है। सघ का आबालवृद्ध गुरुभक्त है और दिन भर उपाश्रय भरा रहता है।'

वे बोले "तब तो हमे उत्सव का लाभ मिलना ही चाहिये।"

पूज्य गुरुदेव ने उत्सुकतावश पूछा "कौनसा उत्सव करना चाहते हो ?"

वे बोले "हमारा अठाई महोत्सव करने का विचार है और एक अपूर्व लाभ भी हमे मिलना चाहिये। हमारे इस गाँव मे ऐसा सुअवसर कब आएगा ?"

आपश्री ने पूछा "वह सुअवसर कौन सा है ?" वे अत्यन्त विनम्र वाणी मे बोले "गुरुदेव, पूज्य श्री ललितविजयजी महाराज को और पूज्य श्री कस्तूर विजयजी महाराज को आचार्य पदवी प्रदान करने का है।"

आपश्री बोले "झवेरचन्द भाई ! तुम्हारी इनके लिए जो प्रेम भावना है वह ठीक है। मैं तुम्हारी भावना पर अवश्य विचार करूँगा।"

वे बोले "पूज्य गुरुदेव ! यह मेरी ही नही, मियाँगाँव के समस्त श्री सघ की भावना है।"

दूसरे दिन श्री सघ ने आपश्री की सेवा मे उपस्थित हो हाथ जोड, विनती कर कहा कि हमारी विनती पर क्या विचार हुआ ?

आप बोले "तथास्तु! तुम्हारा आग्रह भी है और दोनो योग्य भी हैं। अत अपनी भावना पूण करो।"

उन्होंने कहा गुरुदेव! मुहूर्त बताइये। तब आपने पचाग देसकर वैशाख सुदि छठ का मुहूत बताया।

स १९९३ की वैशाख सुदि छठ के मगलमय प्रभात मे पजाव केसरी के द्वारा उपाध्याय श्री ललितविजयजी तथा श्री उद्योत-विजयजी महाराज के शिष्य पन्यास श्री कस्तूरविजयजी को आचार्य पदवी दी गई।

मगल आशीर्वाद के बाद पूज्य गुरुदेव ने उन्हें आचाय का उत्तरदायित्व और आचार्यपद की महत्ता बताई, समाज कल्याण के लिए उत्साहपूवक काम करने मे तत्पर रहने की सलाह दी तथा चतुर्विध सघ की सेवा करने और उत्तम प्रकार से चारित्र पालने की सीख दी।

सघ मे उस समय आबालवृद्ध सभी प्रसन्न थे। उस दिन श्रीफलो की प्रभावना हुई और शाम को स्वामी वात्सल्य भी हुआ।

—आदश जीवन पृष्ठ ३७८ से ३८०,
से साभार उद्धृत।

*

२०

हीरक-जयंती

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज ७५ वर्ष के हुए। बीकानेर शहर मे पूज्यश्री बाईस वर्ष बाद पधारे थे। आपश्री के पट्टालकार, शिष्य-रत्न आचार्य श्री विजयललित सूरिजी भी मरुभूमि से आ पहुँचे। भव्य स्वागत हुआ। हाथी, घोडे, पैदल और मिलिटरी का बैंड, सभी सरकारी लवाजमा, स्वागत जुलूस मे सम्मिलित था। सघ की तरफ से स्थान-स्थान पर नये दरवाजे बना कर सजाये गये थे। पजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान के हजारो लोगो ने हीरक जयन्ती मे भाग लिया था। कोचरो की गवाड मे विशाल मडप बनाया गया था। जुलूस जब मडप पर पहुँचा तब पूज्य गुरुदेव व्यासपीठ पर जाकर विराजे। उनकी तेजस्विता ऐसी थी कि साक्षात् इन्द्रदेव हो। गुरुदेव के जयघोष से मडप गू ज उठा। दो अभिनन्दन पत्र आपको भेंट किये गये। पूज्य गुरुदेव ने महामगलकारी नवमत्र सुनाया, फिर ज्ञान महिमा विषय पर अति उत्तम व्याख्यान दिया।

हीरक महोत्सव, सवत् २००१ कार्तिक वदि १३ से प्रारम्भ होकर कार्तिक शुक्ला २ (भाई दूज) तक चालू रहा।

इस अवसर पर श्री पाश्वनाथ उम्मेद जैन कॉलेज फालना की भजन मडली ने गुरुभक्ति के गीतो से श्रोताओ को रसमग्न कर दिया। पूज्य गुरुदेव की सत्प्रेरणा से श्री सघ ने सवत् १९८७ मगसर सुदि १३ विक्रमी के शुभ दिन जालोर जिलान्तगत उम्मेदपुर ग्राम मे श्री पार्श्वनाथ जैन बालाश्रम की स्थापना की थी, परन्तु स १९९७

विक्रमी मे जवाई नदी की भयकर बाढ से विद्यालय भवन क्षतिग्रस्त हो गया और बालक भयभीत होकर विद्यालय छोडकर चले गये, फलस्वरूप सस्था के आनरेरी गवनर लोकमान्य श्रीमान् गुलाबचन्दजी ढड्ढा, वरकाणा तीर्थ पधारे। सम्वत् १९९७ पोष वदि १० को श्री गोडवाड जैन समाज का एक विशेष अधिवेशन उस तीर्थस्थल पर हुआ जिसमे सर्व सम्मति से बालाश्रम को फालना स्टेशन पर स्थानान्तरित करने का शुभ निर्णय लिया गया। पूज्य गुरुदेव के आदेश से उनके पट्टालकार महान् शिष्यरत्न आचार्य श्री विजय-ललितसूरिजी महाराज ने इस सस्था का पुत्रवत् लालन-पालन किया। उनके आशीर्वाद से यह सस्था आज उच्च माध्यमिक विद्यालय और डिग्री कॉलेज के रूप मे विकसित हो गई है और ज्ञानालोक से मरुभूमि को प्रकाशित कर रही है। आज भी इसकी ज्योति जिनशासन-रत्न आचार्यदेव श्रीमद् विजयसमुद्रसूरीश्वरजी महाराज के पुण्य प्रताप से प्रज्वलित है और इसके वर्तमान कुल-पति जी जिनशासन दीपक, मुनिभूषण श्री वल्लभदत्त विजय जी महाराज जिनशासन रत्न आचार्यदेव की आज्ञा से इसका मार्गदर्शन कर रहे हैं। इन महामुनिवर्यों के पुण्य प्रभाव से श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय वरकाणा, मरुधर बालिका विद्यापीठ विद्यावाडी खीमेल आदि सस्थाएँ भी शिक्षा क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं परन्तु यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही कि दिव्य गुरुदेव ने जो ज्ञान की ज्योति जलाई थी, उसको सतत प्रज्वलित रखा है—उनके पट्टालकार, मरुधरोद्धारक, प्रखर शिक्षा प्रचारक आचार्यदेव श्रीमद् विजयललितसूरिजी महाराज ने। परमोपकारी गुरुभक्त आचार्यदेव के हम चिर ऋणी रहेंगे। ये शिक्षण सस्थाएँ उनकी गुरुभक्ति और समाज सेवा के भव्य स्मारक हैं।

बीकानेर की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य मे अनेक कार्यक्रम

हुए जिसमे गुरुभक्त आचार्य श्री ललितसूरिजी महाराज का परिश्रम और उत्साह अद्वितीय था। इस प्रसग की प्रशस्ति मे 'आदर्शजीवन' पृष्ठ ४८१, पर यह उल्लेख मिलता है।

"कार्तिक सुदि २ का दिन था। रामपुरिया जैन भवन के विशाल मैदान मे एक मण्डप वनवाया गया था। मडप के स्तम्भो पर आदर्श वाक्य लिखकर लगाये गये थे और वीच वीच मे सुन्दर कविताएँ भी लिखी गई थी। व्यासपीठ पर महान् जैनाचार्यों के फोटो थे। मध्य मे स्व० श्रीमद् आत्माराम जी महाराज और उनके पट्टालकार आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी के फोटो थे। विशाल राजमाग नर नारियो म खचाखच भरा हुआ था। सभी मण्डप की ओर जा रहे थे। गुरुभक्त पजावी स्त्री-पुरुष भी अपने गुरु के गुण-गान करते हुए सभा की ओर जा रहे थे। मडप का प्रवेश द्वार अपनी सजावट के आकपण से लोगो को अपनी तरफ खीच रहा था।

पीले कपडे, सफेद दाडी, मस्तक पर रुपहले केश, तेजस्विनी आँखें, प्रशस्त ललाट, शात-सौम्य मुख मुद्रा, धीर-गभीर-मद गति वाले, आचार्यश्री को आते देखकर 'गुरु विजयवल्लभसूरि की जय' 'पजाब केसरी की जय,' 'आत्मारामजी महाराज की जय,' आदि जयघोपो से सभा मडप ही नही, आसपास का वातावरण और ऊपर का आकाश भी गूज उठा।

व्यासपीठ पर पूज्य गुरुदेव के साथ आचार्य श्री विजयललित सूरि जी महाराज, आचाय श्री विद्यासूरि जी महाराज, पन्यास श्री समुद्रविजय जी महाराज, खरतरगच्छीय आचाय श्री हरिसागर जी महाराज, आचाय श्री मणिसागर सूरि जी महाराज और दोनो गच्छो और पायचद गच्छ का साधु समुदाय विराजमान था। दूसरी खास वनवाई गई छोटी सी व्यासपीठ पर वयोवृद्धा प्रवर्तिनी साध्वी श्री देवश्री जी तथा हेमश्री जी आदि विशाल साध्वी समुदाय यथा स्थान पर बैठा था। पूज्य गुरुदेव ने मगलाचरण किया। फिर

विक्रमी मे जवाई नदी की भयकर बाढ से विद्यालय भवन क्षतिग्रस्त हो गया और बालक भयभीत होकर विद्यालय छोड़कर चले गये, फलस्वरूप सस्था के आनरेरी गवनर लोकमान्य श्रीमान् गुलाबचन्दजी ढड्ढा, वरकाणा तीर्थ पधारे। सम्वत् १९९७ पोष वदि १० को श्री गोडवाड जैन समाज का एक विशेष अधिवेशन उस तीर्थस्थल पर हुआ जिसमे सब सम्मति मे बालाश्रम को फालना स्टेशन पर स्थानान्तरित करने का शुभ निर्णय लिया गया। पूज्य गुरुदेव के आदेश से उनके पट्टालकार महान् शिष्यरत्न आचार्य श्री विजयललितसूरिजी महाराज ने इस सस्था का पुत्रवत् लालन-पालन किया। उनके आशीर्वाद से यह सस्था आज उच्च माध्यमिक विद्यालय और डिग्री कालिज के रूप मे विकसित हो गई है और ज्ञानालोक मे मरुभूमि को प्रकाशित कर रही है। आज भी इसकी ज्योति जिनशासन-रत्न आचार्यदेव श्रीमद् विजयसमुद्रसूरीश्वरजी महाराज के पुण्य प्रताप से प्रज्वलित है और इसके वतमान कुलपति जी जिनशासन दीपक, मुनिभूषण श्री वल्लभदत्त विजय जी महाराज जिनशासन रत्न आचार्यदेव की आज्ञा से इसका मार्गदर्शन कर रहे है। इन महामुनियों के पुण्य प्रभाव से श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय वरकाणा, मरुधर बालिका विद्यापीठ विद्यावाडी खीमेल आदि सस्थाएँ भी शिक्षा क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं परन्तु यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही कि दिव्य गुरुदेव ने जो ज्ञान की ज्योति जलाई थी, उसको सतत प्रज्वलित रखा है—उनके पट्टालकार, मरुधरोद्धारक, प्रखर शिक्षा प्रचारक आचार्यदेव श्रीमद् विजयललितसूरिजी महाराज ने। परमोपकारी गुरुभक्त आचार्यदेव के हम चिर ऋणी रहेंगे। ये शिक्षण सस्थाएँ उनकी गुरुभक्ति और समाज सेवा के भव्य स्मारक हैं।

बीकानेर की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य मे अनेक कार्यक्रम

हुए जिसमे गुरुभक्त आचाय श्री ललितसूरिजी महाराज का परिश्रम और उत्साह अद्वितीय था। इस प्रसग की प्रशस्ति मे 'आदर्शजीवन' पृष्ठ ४८१, पर यह उल्लेख मिलता है।

"कार्तिक सुदि २ का दिन था। रामपुरिया जैन भवन के विशाल मैदान मे एक मण्डप बनवाया गया था। मडप के स्तम्भो पर आदर्श वाक्य लिखकर लगाये गये थे और बीच बीच मे सुन्दर कविताएँ भी लिखी गई थी। व्यासपीठ पर महान् जैनाचार्यों के फोटो थे। मध्य मे स्व० श्रीमद् आत्माराम जी महाराज और उनके पट्टालकार आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि जी के फोटो थे। विशाल राजमार्ग नर नारियो मे खचाखच भरा हुआ था। सभी मण्डप की ओर जा रहे थे। गुरुभक्त पजाबी स्त्री-पुरुष भी अपने गुरु के गुण-गान करते हुए सभा की ओर जा रहे थे। मडप का प्रवेश द्वार अपनी सजावट के आकर्षण से लोगो को अपनी तरफ खीच रहा था।

पीले कपडे, सफेद दाडी, मस्तक पर रूपहले केश, तेजस्विनी आँखें, प्रशस्त ललाट, शान्त-सौम्य मुख मुद्रा, धीर-गभीर-मद गति वाले, आचार्यश्री को आते देखकर 'गुरु विजयवल्लभसूरि की जय' 'पजाब केसरी की जय,' 'आत्मारामजी महाराज की जय,' आदि जयघोषो से सभा मडप ही नही, आसपास का वातावरण और ऊपर का आकाश भी गूज उठा।

व्यासपीठ पर पूज्य गुरुदेव के साथ आचार्य श्री विजयललित सूरि जी महाराज, आचार्य श्री विद्यासूरि जी महाराज, पन्यास श्री समुद्रविजय जी महाराज, खरतरगच्छीय आचाय श्री हरिसागर जी महाराज, आचार्य श्री मणिसागर सूरि जी महाराज और दोनो गच्छो और पायचद गच्छ का साधु समुदाय विराजमान था। दूसरी खास बनवाई गई छोटी सी व्यासपीठ पर वयोवृद्धा प्रवर्तिनी साध्वी श्री देवश्री जी तथा हेमश्री जी आदि विशाल साध्वी समुदाय यथा स्थान पर बैठा था। पूज्य गुरुदेव ने मगलाचरण किया। फिर

स्वागत-गीत गाये गये। हीरक महोत्सव समिति के मंत्री ने प्रारम्भिक भाषण दिया और सारे भारतवर्ष से आये हुए 'वल्लभगुरु दीर्घजीवी और तन्दुरस्त रहें'—ऐसी भावना प्रकट करने वाले, तार और पत्र पढ़कर सुनाये।' इस प्रसंग पर गुरुभक्त आचार्य श्री ललितसूरिजी महाराज ने पूज्य गुरुदेव की प्रशस्ति में ये उद्‌गार प्रकट किये पूज्य गुरुदेव के चरणकमलों में श्रद्धापुष्प अर्पित करने का यह सुअवसर हमारे पुण्योदय से प्राप्त हुआ है। कुछ प्रसंग अत्यन्त चमत्कारी हैं जिनको श्रवण कर पावन चरणों में मस्तक झुकता है।

पूज्य गुरुदेव गुजरांवाला में विराजमान थे। चातुर्मास के अन्तर्गत वर्षा नहीं होने से जन-जीवन त्रस्त हो गया। दुष्काल की भयंकर छाया स्पष्ट दीखने लगी। आचार्य श्री ने तप की आराधना करवाई। तप के मंगल प्रभाव में सुखद वर्षा हुई। जनता ने पूज्य गुरुदेव का जय जयकार किया।

पूज्य गुरुदेव होशियारपुर में पधारे। अचानक दंगा हो गया। गुण्डों ने उपाश्रय भवन में आग लगाने का प्रयास किया। परन्तु उस समय अचानक पुलिस पार्टी का आगमन हुआ। दंगाखोर भाग खड़े हुए। पूज्य गुरुदेव उस प्रसंग पर अत्यन्त शान्त भाव से धर्म ध्यान में लीन थे। धर्म के प्रभाव से महामंगल हो गया।

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान विभाजन का समय था। हिंदू-मुस्लिम बन्धुओं में भयंकर तनाव था। पूज्य गुरुदेव ने गुजरांवाला शहर से भारत भूमि में आने के लिए श्रावकों के साथ विहार किया। एक नहर के पुल के पास हजारों दंगाखोर अचानक पहुँच गये। यह विकट समय था, परन्तु गुरुदेव पूर्ण शान्ति के साथ ध्यानलीन तारणहार जिनेश्वरदेव का स्मरण करने लगे। हमलाखोर समीप पहुंचने ही वाले थे कि अचानक एक सिक्ख सरदारजी २०० मिलिट्री के जवानों के साथ वहाँ आ पहुँचे। सिक्ख सरदारजी के साथ उनकी पत्नी भी थी जो पूज्य गुरुदेव को पहिचानती थी। उसके संकेत पर

सरदारजी ने हमलाखोरो को ललकारा। हमलाखोर सशस्त्र जवानो को देखकर भाग गये। तत्पश्चात् सरदारजी ने पूज्य गुरुदेव एव समस्त श्रावक-समुदाय को ससलामत भारतभूमि मे पहुँचाया।

जूनागढ मे ग्राचार्य श्री उपाश्रय भवन मे व्याख्यान दे रहे थे। वचनामृत पान कर जनता हर्ष-विभोर थी। व्याख्यान ऊपर की मजिल पर हो रहा था। एकाएक एक बालिका खिडकी मे से नीचे गिर पडी। सभा मडप मे कोलाहल हुग्रा। पर जब नीचे जाकर उस बालिका को देखा तो वह फूल के समान भूमि पर चुपचाप पडी हुई मिली। पूज्य गुरुदेव के पुण्य प्रभाव से ग्रमगल टल गया ग्रौर ग्रानन्द-मगल छाया रहा।

ग्राचाय श्री ललितसूरि जी महाराज जब इस प्रसगो को सुना रहे थे तब उनके नयन-मोती भी टपक पडते थे। उन हर्षाश्रुग्रो को देखकर श्रोताग्रो की ग्राखे भी गीली हो जाती थी। ग्रपने व्याख्यान के ग्रन्त मे ग्रद्वितीय शिष्यरत्न ग्राचार्य श्री ललितसूरि जी ने पूज्य गुरुदेव की विद्वत्ता पर प्रकाश डाला जिसका पावन-प्रसाद सुविज्ञ पाठको के लिए यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। सरल वाणी मे पच परमेष्ठि एव ज्ञान-दर्शन-चारित्र (रत्नत्रयी) की गुरुदेव ने सरस व्याख्या की है

१ ग्ररिहत भगवान

ग्रष्टकम ग्ररिभूत को
हनन करे ग्ररिहत।

२ सिद्ध भगवान

जन्म नहि, मरणा नहि,
नहि जरा, नहि रोग।

३ ग्राचाय भगवान

पण-पण व्रत समिति युता,
गुप्ति तिग सोहत।

पाले पाच आचार को,
चार कषाय वमत ।
पचेन्द्रिय के सवरी,
नव गुप्ति ब्रह्मधार ।

४ उपाध्याय भगवान—

पटे पढावे शुभ को उपाध्याय भगवान

५ साधु महाराज—

साधु साधे मोक्ष को,
वश कर मन-वच-काय ।

६ ब्रह्मचय—

ब्रह्म नाम है ज्ञान का,
ब्रह्म नाम है जीव ।
सदाचार ब्रह्म नाम है,
रक्षा वीर्य सदीव ।
ब्रह्मचय तप मे मिले,
मोक्ष परम-पद धाम ।
चतुराश्रम मे मुख्य है,
ब्रह्मचय का नाम ।

७ ज्ञान

ज्ञान जगत मे सार है,
ज्ञान परम हितकार,
ज्ञान सूय से होत है,
दुरित तिमिर अपहार ।

८ दर्शन—

दशन विना नहि जीव को
दर्शन होत जिणद ।
दशन निर्मल कारणी,
पूजा श्री जिनचन्द ।

९ विषय त्याग—

त्यागो त्यागो भवि प्रान्त
ये तो नरक तणी निशानी।

पूज्य गुरुदेव की विनयशीलता, विद्वत्ता एव चमत्कारी गुणो का गुणगान करते हुए आचार्य श्री ललितसूरि जी ने अनेक बार वन्दना की। श्रोतागण उस विनय वाणी से इतने प्रभावित हुए मानो उनको अमृत ही प्राप्त हुआ हो। सबके मन मे पूज्य गुरुदेव की सौम्य प्रतिमा बस गई। सब धन्य-धन्य हो गये।

अद्वितीय शिष्य-रत्न के मुखारविंद से पूज्य गुरुदेव के गुण-गान श्रवणकर श्रोतागण गद्गद् हो गये। सभी पूज्य मरुधरोद्धारक की गुरुभक्ति की सराहना करने लगे।

२१

व्याख्यान वाचस्पति

सम्वत् २००५ । पूज्य आचार्य श्री विजयललितसूरिजी महाराज का चातुर्मास भावनगर मे हुआ । वे अपने सुमधुर व्याख्यान से जनता को लाभान्वित करते रहे । एक दिन पूज्य आचार्य श्री ने मदिरापान के भयकर दुष्परिणामो पर भाषण दिया । उनके व्याख्यान मे सभी जाति और धर्म के लोग आते थे और अनेक इतने प्रभावित हो जाते थे कि तत्काल मास-मदिरा का परित्याग कर देते थे। पूज्य आचार्यदेव ने मदिरापान के दुष्परिणामो पर प्रकाश डालते हुए परम पूज्य कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित योगशास्त्र के उद्धरण प्रस्तुत किये—

पापा कादम्बरीपान – विवशीकृतचेतस ।
जननी हा ! प्रियीयन्ति, जननीयन्ति च प्रियाम् ।

[मदिरापान से विह्वल चित्तवाले विवेकशून्य शराबी, माता को प्रिया (पत्नी) तथा पत्नी को माता मानकर भ्रष्ट व्यवहार करने लगते हैं ।]

मद्यपस्य शवस्येव, लुठितस्य चतुष्पथे ।
मूत्रयन्ति मुखे श्वाना, व्यात्ते विवरशङ्कया ॥

[मुर्दे के समान रास्ते मे पडे हुए शराबी के खुले मुख मे, खड्डे के भ्रम मे कुत्ते पेशाब करते हैं ।]

वारुणीपानतो यान्ति, कान्तिकीर्तिमतिश्रिय ।
विचित्राश्चित्र रचना विलुठत्कज्जलादिव ॥

[जैसे सुन्दर एव कलात्मक चित्र काजल से कुरूप हो जाता है, वैसे ही मदिरापान से शरीर की काति, यश, हाजिर जवाबी एव सपत्ति-समृद्धि का विनाश होता है।]

विवेक सयमो ज्ञान सत्य शौच दया क्षमा।
मद्यात् प्रलीयते सर्व, तृण्यावह्निकणादिव ।।

[अग्नि की एक चिनगारी से जैसे विशाल घास की गजी जलकर खाक हो जाती है वैसे ही मदिरापान में मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है फिर उसे इष्ट-अनिष्ट का ध्यान ही नही रहता। मदिरापान से सयम, सत्यवाणी, सदाचरण, करुणा तथा क्षमा आदि अनेक मानवीय गुणो का विनाश हो जाता है।]

विदधत्यङ्गशैथिल्य ग्लपयतीन्द्रियाणि च।
मूर्च्छामतुच्छा यच्छन्ति हाला हालोपमा ।।

[शराब हलाहन जहर है जिससे शरीर के समस्त अग शिथिल बन जाते हैं, नेत्र-ज्योति मद पड जाती है तथा शरीर की कायशक्ति का क्षय हो जाता है। इससे मनुष्य बेहोश हो जाता है। सचमुच शराब और विष दोनो के लिए सब प्रकार के विशेषण प्रयुक्त होत हैं।[

इस व्याख्यान की इतनी प्रशसा हुई कि 'जैन' साप्ताहिक पत्र मे श्री सुशील ने पूज्य मरुधरोद्धारक की वक्तृत्वकला पर एक विस्तृत लेख लिखा जिसमे उनको व्याख्यान-वाचस्पति आदि विशेषणो से विभूषित किया।

११

पुष्पांजलि

पूज्य मरुधरोद्धारक, परम गुरुभक्त आचार्य श्री ललितसूरि जी महाराज चातुर्मास के पश्चात् भी भावनगर मे विराजमान थे। उनका स्वास्थ्य अच्छा नही रहता था, अत औषधोपचार चल रहा था। एक दिन पत्र द्वारा उन्हे ज्ञात हुआ कि पूज्य गुरुदेव सादडी (मारवाड) मे बीमार है। इस समाचार से उनको बहुत दु ख हुआ। उन्होने भावनगर से उग्र विहार किया। विहार के अन्तर्गत सदा गुरुदेव के चरण-कमलो का ध्यान रहता था। बार बार गुरुदेव की सौम्य छवि नेत्रो के सामने आती। यही अभिलाषा थी कि पूज्य गुरुदेव की सेवा मे शीघ्र पहुँच जाऊँ। जब वे पूज्य गुरुदेव के पास पहुँचे तब उनके हर्ष का पार नही रहा। गद्गद् होकर चरण-सरोज मे पुष्पमाल की तरह लिपट गये। आनन्दाश्रु टपक रहे थे। उस समय पूज्य गुरुदेव भी भाव-विभोर हो गये। उनका वरदहस्त अपने शिष्यरत्न के शीश पर शोभित था, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कल्पतरु की शीतल छाया हो।

पूज्य मरुधरोद्धारक जी ने वह चौमासा गुरुदेव के साथ सादडी मे किया। चातुर्मास के पश्चात् मरुभूमि के अनेक ग्राम-नगरो को पावन करते हुए पूज्य गुरुदेव ने फालना के लिए विहार किया। वहाँ सवत् २००६, मिति माघ शुक्ला पूर्णिमा, तदनुसार ता० १५-२-५० को श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्स का अधिवेशन होने वाला था।

अद्वितीय शिष्यरत्न आचार्य श्री ललितसूरि जी भी वरकाणा होते हुए खुडाला की ओर रवाना हुए। वरकाणा से खुडाला पहुँचते-पहुँचते तो उनके हाथ-पैरो ने जवाब दे दिया। खुडाला मे वे इतने बीमार पडे कि सथारा ही पकडना पडा। उपचार चालू था और सभी साधु सेवा मे लगे रहते थे।

गुरुदेव वार-वार उनके स्वास्थ्य की पूछताछ करते थे और उनको सुख-शाति मिले, ऐसी व्यवस्था करते थे। सदा उनके पास जाते, आत्मा की अमरता, शरीर की क्षण भगुरता तथा कर्म की विचित्रता बताते और कहते

"तुमने तो मरुभूमि मे विद्या के धाम बना कर अनुपम काय किया ह। अत तुम्हारा जीवन कृतकृत्य हुआ है। मोहमाया के सब विचार छोडकर अरिहत का स्मरण करो। तुम्हारा सब तरह से कल्याण होगा। तुम्हारी आत्मा का सब तरह से मगल होगा।"

पूज्य आचार्य श्री ललितसूरि जी अपने आराध्य गुरुदेव के आशीवचन शिरोधाय कर सताप धारण करते और 'अरिहत-अरिहत' का जाप करने लगते।

वतमान गच्छाधिपति, जिन शासन रत्न आचायदेव श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वर जी महाराज, जो अतिम समय तक उनके पास विराजमान थे, कहते हैं कि पूज्य आचाय श्री ललितविजय जी महाराज की यही भावना थी कि पूज्य गुरुदेव के चरणो मे उनके प्राणपखेरू निकले। पूज्य गुरुदेव भी वार-वार आकर उनको अपने कोमल कर-कमलो से सहलाते, अमृतवाणी मे आश्वस्त करते। यद्यपि बीमारी का प्रकोप भीषण था, परन्तु गुरुदेव की छत्रछाया विद्यमान थी। वह ऐसी शीतल छाया थी जो मगलदात्री और आनदवर्षिणी थी। रुग्ण आचाय श्री कभी आखे खोलते और गुरुदेव के दर्शन कर तृप्त होते और कभी कभी 'अरिहत-अरिहत' कहते। कभी-कभी गुरुदेव का स्मरण करते 'अहा! मेरे गुरुदेव!

भस्मीभूत हुआ, उस समय वहा आये हुए लोगो मे से कोई भी ऐसा न था जिसकी आखो मे मोती तुल्य अश्रुबिंदु न हो। फालना स्टेशन के पास की धर्मशाला के बगीचे में स्वर्गवासी के शरीर का अग्नि-संस्कार किया गया।

चतुर्विध सघ ने देव-वन्दन किया। गुरुदेव ने सान्त्वना दी।

माघ शुक्ला एकादशी को शोकसभा हुई। खुडाला ग्राम के उपाश्रय भवन के समीप के मैदान मे विशाल जन-समूह एकत्रित हुआ। सभापति पद पर विराजमान थे लोकमान्य श्री गुलाबचन्दजी ढड्ढा। सभा मे शोक छाया हुआ था। स्वर्गस्थ आचार्यश्री का हँसता चेहरा हर एक के हृदयपट पर अकित था। पूज्य गुरुदेव ने स्वर्गीय आचार्यश्री के विद्याप्रेम, सेवाभक्ति तथा चरित्र की प्रशसा की। पन्यासश्री समुद्रविजय जी ने उनकी गुरुभक्ति की सराहना की। प० पूर्णानन्दविजय जी, तथा मुनिराज प्रकाशविजय जी ने उनको श्रद्धाजलि अर्पित की। श्री निहालचन्दजी, श्री फूलचद भाई शाम जी, श्री वीरचन्द भाई सेठ मूलचन्द जी, पडित रामकुमार जी ने भी गुणगान करके उनके चरण-कमलो मे श्रद्धा की पुष्पाजलि अर्पित की। अध्यक्ष पद से बोलते हुए लोकमान्य गुलाबचन्द जी ढड्ढा ने कहा—स्वर्गीय आचार्यदेव की गुरुभक्ति अद्वितीय थी। उनकी विद्वत्ता अनुपम थी। उनकी वक्तव्य कला से सब मोहित हो जाते थे और सगीत की मधुरता सबको रसमग्न कर देती थी। मरुभूमि मे ज्ञानगगा लाने वाले भगीरथ की तरह आप सदा याद रहेगे। आचार्यश्री का पार्थिव देह नही रहा परन्तु यश शरीर विविध सरस्वती मदिरो के रूप मे सदा सर्वदा रहेगा। युग-युग तक मरुवासी इन दिव्य चरणकमलो मे पुष्पाजलि अर्पित करते रहेगे।

जब अध्यक्षजी ने अपना भाषण समाप्त किया, सहस्रो नेत्रो ने अश्रु-पुष्प बरसा कर परमोपकारी आचार्यश्री को पुष्पाजलि अर्पित की।

• पूज्य प० श्री पूर्णानन्द विजय जी महाराज परम पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजयललितसूरीश्वर जी महाराज के पट्टधर आचार्य रत्न हैं।

श्री जिनशासन रत्न, शान्तमूर्ति

परमपूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयसमुद्रसूरीश्वरजी महाराज

२३

वर्तमान गच्छाधिपति, जिनशासन रत्न आचार्य भगवान् के–

पत्र-पुष्प

मरुभूमि मे ज्ञान की गगा लाने वाले पूज्य अचार्यदेव श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के पट्टालकार आचाय देव श्रीमद् विजय ललित सूरीश्वरजी महाराज का अनन्त उपकार चिर स्मरणीय रहेगा। उनकी पुण्यस्मृति मे पूज्य मुनि भूषण, मरुधररत्न, जिनशासन दीपक श्री वल्लभदत्त विजयजी ने पचसूत्री कार्यक्रम बनाया है

१ जिन मदिरो का जीर्णोद्धार

२ जैन समाज के कायकर्त्ताओ और गुरुभक्तो का सम्मान करना।

३ जैन समाज के जरूरतमद जैन छात्र/छात्राओ को अध्ययनार्थ सहायता देना।

४ समाज को सगठित करना।

५ स्वर्गीय गुरुदेव आचार्य श्री ललितसूरिजी महाराज का स्मारक स्थापित करना, उनके जीवन चरित्र का आलेखन एव चित्राकन।

पूज्यपाद श्री मुनि भूषणजी की महान् प्रेरणा, अथक परिश्रम एव मार्गदर्शन मे श्री सघ उपयुक्त कार्य सम्पन्न कर रहा है। इस सबध मे वर्तमान गच्छाधिपति जिनशासन रत्न, आचार्य भगवान श्रीमद विजय समद्र सूरी ... मुनि भूषणजी की

भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए अनेक पत्र भेजे हैं जिनके कुछ अश यहां पर उद्धृत करता हू

सुलतानपुर लाधी (पजाब)
२२-५-७६

"परम पूज्य गुरुदेव श्री १००८ श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी महाराज की अभिलाषा थी कि समस्त जैन समाज भगवान् श्री महावीर स्वामीजी के झण्डे के नीचे एकत्रित होकर श्री महावीर की जय बोले। आदर्श गुरुभक्त पूज्य मुनि भूषणजी के शुभ कार्य से उनका स्वप्न साकार होगा। गोड़वाड क्षेत्र मे आप इस वृद्धावस्था मे प्रेम और दत्तचित्त होकर पूज्य गुरुभक्तो को एक माला मे मालाकार बना कर गू थने का प्रयास कर रहे हैं, वह अभिनदनीय है। आपके प्रयासो की जितनी प्रशसा की जाय, उतनी कम है। परम पूज्य गुरुदेव आपको सतत शक्ति प्रदान करें।"

सुलतानपुर लोधी से पूज्य आचार्य देव दूसरे पत्र मे लिखते है
आदर्श गुरुभक्त श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज,
वदनानुवदना सुखशाता।

सब पत्रो से गोडवाड ओसवाल समाज का सगठन आपके अथक प्रयत्न से हुआ है, जानकर बडी भारी प्रसन्नता हुई है। जब मैं पजाब आ रहा था, उस समय दोनो महासभाओ को मिलाकर ओसवाल समाज का सगठन कराया था, परन्तु फिर बाद मे चुनाव के नाम से झगडा कर दिया। आपने पजाब से वहा जाकर गोडवाड ओसवाल श्री सघ के सगठन का बीडा उठाया, उसमे आपको बडी भारी सफलता मिली, एतदर्थ कोटानुकोटि धन्यवाद के पात्र हैं।

निस्सन्देह, आपने आदर्श गुरुभक्त इस विशेषण को सफल बनाया है और दुनिया को बता दिया है कि 'मैं सच्चा गुरुभक्त हूँ।' पूज्यपाद मरुधर उद्धारक, प्रखर शिक्षा प्रचारक आचार्य १००८ श्रीमद् विजयललित सूरीश्वरजी महाराज मे रोम-रोम में गुरुभक्ति

भरी पडी थी और गुरुदेव आचाय भगवान् अज्ञान तिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु, भारत दिवाकर, पजाव केसरी श्रीमद् १००८ श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के प्रति पूरी लगन थी। वे रात-दिन एक कर कार्य मे लगे रहे। इस तरह आपने भी ललित गुरु के नाम पर तनमन से कष्टो की परवाह न करके उनके नाम पर कार्य किये और करवा रहे है, तदर्थ गोडवाड समाज आपका कई भवो तक आभारी रहेगा।

ओसवाल श्री सघ भी धन्यवाद का पात्र है जिसने आपके उपदेश और प्रेरणा से सगठन मजवूत बनाकर गुरुदेवो के नाम पर चार चाद लगाये हैं। सगठन हमेशा बना रहे, यही दिल की भावना है।

आचार्य भगवान् की आज्ञा से
इन्द्रदिन्नसूरि का वदनानुवदन।

तृतीय-पत्र

होशियारपुर (पजाव)
दिनाक १६-८-७६

स्मृति उसी की आती है जिसका परोपकारमय परमार्थी पावन जीवन है, जो समाज के कल्याण एव उद्धार के लिए स्वय समर्पित हुआ हो।

आचायदेव श्री विजयललित सूरीश्वरजी महाराज एक आदश ज्ञाननिष्ठ सच्चे गुरुभक्त सूरीश्वर थे। उनकी जब कभी मुझे याद आती है तब मैं भाव-विभोर हो जाता हूँ। महापुरुपार्थी गोडवाड की जनता के प्राण एव वरकाणादि सस्थाओ के सजक, सरक्षक, सयोजक तथा सचालक बन शिक्षा का प्रचार आजीवन करते रहे। गाँव-गाव मे पैदल घूम सरस्वती के साधनो को साथ लिया। ऐसे महापुरुष की स्मृति मे हमारे आदर्श गुरुभक्त मुनि-भूपण श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज भगीरथ कार्य की साधना मे समुद्यत

हुए हैं एतदर्थ धन्यवाद के पात्र हैं और मेरी आत्मीय भावना है कि ऐसे महापुरुष की पुण्य स्मृति में अवश्य ही गुरुभक्तों का हार्दिक अभिनन्दन हो एवं स्वर्गस्थ गुरुदेव श्री वल्लभ के वात्सल्यपात्र श्री ललितसूरीश्वर जी महाराज का सही यशोगान हो। ललित तो लोक-कल्याण की करुणामूर्ति के कृपासिंधु सूरीश्वर थे। उनकी महिमा का मम तो मरुस्थली के कण-कण में बिखरा पडा है। कोई भी उसे ग्रहण कर गुरुभक्ति का गौरव चमका सकता है।

विजय समुद्र सूरि

२४

समयानुक्रम

जन्म सम्वत् १९३७, कार्तिक शुक्ला १

जन्मस्थान भखरियारी ग्राम (जिला गुजरावाला-वर्तमान पाकिस्तान)

ससारी नाम लक्ष्मणदास

पिताश्री श्री दौलतराम जी

जाति स्वर्णकार

पूज्य गुरुदेव श्रीमद् वल्लभसूरीश्वरजी महाराज के प्रथम दर्शन—सम्वत् १९५३, गुजरावाला मे

दीक्षा सम्वत् १९५४, वैशाख शुक्ला अष्टमी

दीक्षास्थल नारोवाल नगर (पजाब)

दीक्षा-नाम मुनि श्री ललितविजय जी

गुरुभक्त की पदवी सम्वत् १९८२, गुजरावाला नगर
[पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य मे परन्तु मुनि श्री उस समय विलेपार्ले (बम्बई) मे विराजमान थे।]

मरुधरोद्धारक एव प्रवरशिक्षा प्रचारक

अलकरण सम्वत् १९९०, वैशाख शुक्ला ३,
ता० १३-८-१९३३, गुरुवार,
श्री वामणवाडा तीर्थ मे आयोजित
श्री पोरवाल सम्मेलन मे।

पन्यास पद सम्वत् १९७५, कार्तिक वदि ५, बाली नगरी मे।

उपाध्याय पद सम्वत् १६६१, वैशाख शुक्ला १०, सोमवार, वीसलपुर ग्राम (स्टेशन जवाई बांध)

—पूज्य योगिराज श्रीमद् विजयशांतिसूरीश्वर जी महाराज के सान्निध्य में।

आचार्य पद मियाँ गांव (गुजरात), सम्वत् १६६३, वैशाख शुक्ला ६, पूज्य गुरुदेव की निश्रा में।

मांगलिक कार्य १ सम्वत् १६६१, वैशाख शुक्ला १०, सोमवार को वीसलपुर ग्राम में श्री धर्मनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा अंजनशलाका। भगवान् धर्मनाथ की भव्य मूर्ति सम्वत् १४६६ की है। वर्तमान दादावाडी में सुशोभित है।

२ सम्वत् १६६७, मगसर सुदि ११ को उम्मेदपुर (जिला जालोर) स्थित श्री अमीजरा सहस्रफणा पार्श्वनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका। भगवान पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा ६ फुट १ इंच ऊँची है। जैसे अमृत झर रहा हो। दर्शन कर आनन्दामृत अवश्य पीजिए।

३ सम्वत् २००० में वरकाणा महातीर्थ में उपधान तप की आराधना आपके सान्निध्य में सोल्लास सम्पन्न। उस प्रसंग पर दो दीक्षाएँ भी हुईं।

४ सम्वत् २००३, मगसर सुदि १३ को बालद्री ग्राम (जिला सिरोही) के नव निर्मित श्री नमिनाथ भगवान के जिनालय की प्रतिष्ठा अंजनशलाका आपके कर-कमलों द्वारा सम्पन्न।

सरस्वती मन्दिर

१ महान् ज्योतिषी आचार्य सम्राट श्री विजयानन्द जी

महाराज (श्रीमद् आत्मारामजी) के समाधि मन्दिर, गुजरावाला में सम्वत् १९८१, माघ शुक्ला पचमी के शुभ दिन श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल की स्थापना मे आपका अपूर्व योगदान। बम्बई निवासी श्रेष्ठि विट्ठलदास ठाकुरदास भाई ने रु० ३२००० की रकम आपकी प्रेरणा से दान में दी, फलस्वरूप पूज्य गुरुदेव की श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल की स्थापना की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

२ सम्वत् १९८७, मगसर सुदि १३ को उम्मेदपुर मे पूज्य गुरुदेव की सत्प्रेरणा से श्री पार्श्वनाथ जैन बालाश्रम की स्थापना सम्वत्। १९९७ पोष वदि १० को बालाश्रम का फालना स्टेशन पर स्थानान्तरण। इसका विकास श्री पार्श्वनाथ उम्मेद माध्यमिक विद्यालय एव श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय के रूप मे हुआ है। इसका समस्त श्रेय पूज्य आचार्य भगवान श्रीमद् विजय-वल्लभसूरीश्वर जी के पट्टालकार आचार्यदेव श्रीमद् विजयललित-सूरीश्वरजी को है। प्रारम्भ मे लोकमान्य श्री गुलाबचन्दजी ढड्ढा ओनरेरी गवर्नर का महान योगदान रहा।

३ श्री पार्श्वनाथ उच्च माध्यमिक विद्यालय, वरकाणा के प्रतिपालक। पूज्य आचार्यश्री ललितसूरिजी महाराज ने ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूमकर सदुपदेश दिया, फण्ड एकत्रित करवाया तथा केवल ९ विद्यार्थियो से इस सस्था की अति परिश्रम से सम्वत् १९८३, महासुदि ५ को स्थापना की। प्रारम्भ मे घाणेराव निवासी श्री जमराज जी सिंघी का सहयोग प्रशसनीय रहा। पूज्य मरुधरोद्धारक की यह सस्था वटवृक्ष के समान फैल गई है।

४ श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई के विकास के लिए पूज्य आचार्यश्री ललितसूरिजी महाराज परमपूज्य गुरुदेव की आज्ञा से बम्बई पधारे थे जिसका वर्णन 'स्नेहाजलि' अध्याय मे पढिये।

ग्रन्थ लेखन श्री महावीर सन्देश, श्री कुमारपाल चरित, श्री हीर-विजय सूरि चरित आदि।

कलाप्रेम — संगीत-साहित्य कला मर्मज्ञ। विविध राग-रागिनियों का ज्ञान। मधुर कण्ठ। जब पूजा पढ़ाते थे, श्रोता रसमग्न हो जाते थे।

भाषणकला — प्रभावकारी। व्याख्यान में विद्वत्ता एवं मधुरता का सम्मिश्रण। इस कला के कारण वे 'व्याख्यान-वाचस्पति' कहे जाते थे।

महाप्रयाण — सम्वत् २००६, माघशुक्ला ६, खुडाला ग्राम में। प्रात ६ ३० बजे पूज्य गुरुदेव के अंतिम दर्शन के पश्चात्।

स्मारक — प्रात स्मरणीय, कलिकाल कल्पतरु, अज्ञानतिमिर तरणि, पंजाब केसरी आचार्य देव, श्रीमद् विजय-वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज के पट्टालंकार, गुरुभक्त मरुधरोद्धारक, प्रसरशिक्षा प्रचारक आचार्यदेव श्रीमद् विजयललित सूरीश्वरजी महाराज के कलात्मक स्मारक का शिलान्यास सम्वत् २०३२, श्रावण शुक्ला १५, तदनुसार ६ अगस्त १९७६, भाग्यशाली मंगल प्रभात मे श्री पार्श्व नाथ उम्मेद माध्यमिक विद्यालय, फालना के प्रांगण में पूज्य मुनिभूषण, मरुधर रत्न, जिन शासन दीपक, आदर्श गुरुभक्त मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजय जी महाराज के पावन सान्निध्य मे सम्पन्न हुआ। उस शुभ प्रभातवेला में हलकी-हलकी बूँदें बरसाकर इन्द्र महाराज ने जलाभिषेक किया। इधर पूज्य मुनिभूषणजी ने आशीर्वाद की पुष्पवृष्टि की। श्रद्धालु भक्तजनों ने पूज्य आचार्यश्री का जयजयकार करके अपनी भाव भीनी पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

जिन शासन दीपक, मरुधर रत्न

परम पूज्य मुनिगण श्रीमद् वल्लभदत्त विजयजी महाराज

२५

आदर्श गुरु-भक्त

['पुष्पांजलि' के प्रेरक पूज्य मुनि भूषण श्री वल्लभदत्त विजय जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय।

परम पूज्य जिन शासन रत्न आचार्यदेव १००८ श्रीमद् विजय समुद्र सूरीश्वरजी महाराज पूज्य मुनिभूषणजी की प्रशंसा में कहते हैं आपने आदर्श गुरुभक्त–इस विशेषण को सफल बनाया है और दुनिया को यह बता दिया है कि "मैं सच्चा गुरुभक्त हूँ।" ललित तो लोक-कल्याण की करुणामूर्ति के कृपासिंधु सूरीश्वर थे। उनकी पुण्य स्मृति में हमारे आदर्श गुरुभक्त मुनिभूषण श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज भगीरथ कार्य की साधना में समुद्यत हुए है, एतदर्थ धन्यवाद के पात्र है।]

परम पूज्य मुनिभूषण, मरुधर रत्न, जिनशासन दीपक मुनिराज श्री वल्लभदत्त विजयजी महाराज का जन्म भरतपुर रियासत की कामा तहसील के अन्तर्गत भट्टकी नामक ग्राम में एक खाते-पीते जमींदार श्री सालिगरामजी की धर्म-पत्नी भूरिबाई की कुक्षी में हुआ था। आपका सांसारिक नाम वृन्दावन था। आपका परिवार शाकाहारी था। पिताश्री धार्मिक प्रवृत्ति के वैष्णव सद्गृहस्थ थे और मातुश्री धर्मनिष्ठा नारी रत्न थी। ये शाकाहारी और अहिंसक संस्कार वृन्दावनजी को विरासत रूप से अपने परिवार से मिले थे।

विधि की विडम्बना कहे या भाग्य का खेल, बाल्यकाल में ही वृन्दावनजी के माता पिता स्वर्गवासी हो गये। सौभाग्य से उन्हें पूज्य त्रिपुटीजी महाराज के दर्शन आरे में हुए। जीवन ने पलटा खाया। जैनधर्म के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा ने आपके जीवन को सद्गुणों से विभूषित कर दिया।

आपकी लघुदीक्षा हठीसिंह की वाडी अहमदाबाद में पूज्य पन्यास श्री न्यायविजयजी महाराज के कर-कमलों द्वारा परिपूर्ण हुई और बडी दीक्षा पालीताणा में पूज्य आचार्य श्री विजयभक्ति सूरिजी महाराज के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। आप कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणि, पंजाब केसरी, युगवीर आचार्यदेव श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज से इतने प्रभावित हुए कि आपने अपना नाम 'वल्लभदत्त विजय' रखा। आपने जिनशासन रत्न, आचार्यदेव श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी महाराज से वरकाणाजी में उप सम्पदा प्राप्त की व वाली श्री संघ के कृपालु पूज्य मुनिश्री लावण्य विजयजी महाराज के चरण-कमलों में विद्याध्ययन किया। 'बिखरे मोती' में पूज्य मुनिभूषणजी अपने विद्यागुरु पूज्यपाद मुनि लावण्य विजयजी के विषय में लिखते हैं

"उन्होंने मुझे विद्या का प्रसाद देकर आदमी बनाया, उनका उपकार मैं इस जन्म में तो नहीं चुका सकता। जो कुछ मैं हूँ, उन्हीं विद्यागुरु की कृपा का फल हूँ।"

पूज्य मुनिभूषणजी के सदुपदेश से धर्म एवं समाजोत्थान के अनेक मांगलिक कार्य सम्पन्न हुए, जैसे—लावण्य पाठशाला, वाली, कल्पवृक्षनगर देलवाडा (मेवाड) जिनालय, कम्पिलपुर जैन मन्दिर, ग्राउंगांव स्थित भगवान् शान्तिनाथजी जैन मन्दिर, नादाना जिनालय आदि के जीर्णोद्धार। आत्म वल्लभ भवन, सादडी, वाली के स्वामी नोहरे में व्याख्यान भवन, काया और बारापाल की धर्मशालाएँ, आपकी प्रेरणा के सुफल हैं। आप स्पष्टवक्ता स्वभाव के संतत हैं।

फालना विद्यालय के प्रागण मे निर्मित श्री वल्लभ कीर्ति स्तम्भ, श्री वल्लभ विहार एव शाश्वत जिन-मन्दिर आपकी गुरुभक्ति के अक्षय स्मारक हैं।

आपने श्री करेडा पार्श्वनाथ जिनालय के जीर्णोद्धार के लिए भगीरथ प्रयत्न करके बम्बई से लगभग १॥ लाख की रकम भिजवाई थी। आप पुरातत्त्व कलाकृतियो के प्रेमी हैं और उनको सुरक्षित रखने के लिये यथा सभव प्रयत्न करते है। पुरातन शिल्पकृतियो मे भारत की उज्ज्वल सस्कृति विद्यमान है, यह आपकी सुविदित मान्यता है।

आपश्री ने कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणि, पजाब केसरी आचार्य भगवान् श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के शताब्दी महोत्सव मे, जो बम्बई और पूना मे आयोजित हुए थे, अत्यधिक सहयोग देकर अपनी गुरुभक्ति का परिचय दिया।

वर्तमान गच्छाधिपति जिनशासन रत्न आचाय श्रीमद् विजय-समुद्र सूरीश्वरजी महाराज की अध्यक्षता मे सम्पन्न इन्दोर नगर के चातुर्मास मे आपकी प्रेरणा से श्री सघ ने अनेक शुभ काय किये। आपके व्याख्यानो को सुनने के लिये जैन-जैनेतर भारी सख्या मे आते थे। आपकी व्याख्यान शैली समन्वयकारी, समता रसपूर्ण और ज्ञान-गरिमा से युक्त होने के कारण विद्वत् समाज भी नतमस्तक हो जाता है।

आपश्री ने आद्याचार्य पजाब देशोद्धारक न्यायाम्भोनिधि परम पूज्य जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी (श्री आत्मारामजी महाराज) की जन्म-भूमि लहरा (जीरा जिला फिरोजपुर) के दर्शन कर अपने को कृतकृत्य किया। दिल्ली महानगरी मे परमपूज्य आचायदेव श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी महाराज के सान्निध्य मे रहकर आपने देवाधिदेव, त्रैलोक्यपूजित भगवान महावीर स्वामी के २५०० वें निर्वाण-कल्याणक महोत्सव मे सहयोग प्रदान किया।

आप गुणानुरागी हैं। आपश्री ने पूज्यपाद श्रीमद् १०८ श्री महाराज जी का जीवन चरित्र श्री हीरालालजी दूगड़ शास्त्री से लिखवाया। इलाहाबाद में आपने भगवान् आदिनाथ केवल ज्ञान कल्याणक भूमि के जिनालय की प्रतिष्ठा में सहयोग दिया।

आपने रायबरेली जिलान्तर्गत बदायू में 'अहिछत्रा पुण्यभूमि के दर्शन कर महा पुण्यार्जन किया। यहाँ पर भगवान् पार्श्वनाथ ध्यानस्थ थे। कमठ ने जल प्रलय करके उन पर भीषण उपसर्ग किया था और धरणेन्द्रदेव ने उन पर अहिछत्र धर कर अनुपम भक्ति की थी। एक ओर कमठ की दुष्टता थी तो दूसरी ओर धरणेन्द्र की प्रभुजी के प्रति अनन्य भक्ति। परन्तु करुणासागर की दोनों के प्रति सम दृष्टि थी। श्री सकलार्हत् सूत्रकार प्रभु के अद्वितीय समभाव की महिमा में कहते हैं

कमठेधरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति।
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्ति, पार्श्वनाथ श्रियेऽस्तु वः॥

शिवपुरी चातुर्मास की धूमधाम से समाप्ति के बाद आपश्री श्योपुर पधारे और वहाँ श्री ऋषभदेव स्वामी जिनालय की प्रतिष्ठा में सम्मिलित हुए। तत्पश्चात् आपने राजस्थान में पदार्पण किया और कलिकाल कल्पतरु, अज्ञान तिमिर तरणि, पंजाब केसरी के पट्टालंकार मरुधरोद्धारक, प्रखर शिक्षा प्रचारक, गुरुभक्त आचार्य देव श्रीमद् विजयललित सूरीश्वरजी महाराज [illegible] । स्मृति को निरन्तर स्थायी [illegible] उठाया। [illegible] जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार [illegible] श्रीमंगल [illegible] । [illegible], अमृत

मद जैन छात्र-छात्राओ को अध्ययनार्थ सहायता, गुरुभक्तो का सम्मान, जीवन चरित्र-आलेखन और चित्राकन आदि समाविष्ट है। पूज्य मुनिभूपण जी की प्रेरणा, मार्गदर्शन और सत्प्रयास से ऐसे अनेक मागलिक काय सम्पन्न हो चुके है और हो रहे है जिससे समाज मे आनन्दोल्लास की दु दुभि बज रही है। पूज्य श्री के अथक प्रयास एव सदुपदेश से श्री गोडवाड ओसवाल समाज सगठित हो गया है। इस महान् सफलता की प्रशसा करते हुए वर्तमान गच्छाधिपति, जिन-शासन रत्न, आचार्य भगवान् श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी होशियारपुर (पजाब) से अपने १६-८-७६ के पत्र मे लिखते है। "आदर्श गुरुभक्त पूज्य मुनिभूपणजी—आपने पजाब से मरुभूमि म जाकर गोडवाड ओसवाल श्री सघ के सगठन का बीडा झडपा, उसमे आपको बडी भारी सफलता मिली, तदथ काटानुकाटि धन्यवाद के पात्र हैं।" परमपूज्य आचाय भगवान् ने अनेक पत्रो मे पूज्य मुनि-भूपणजी के शुभ कार्य-कलापो की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

पूज्य मुनिभूपणजी की गुरु भक्ति, समाज सेवा तथा धर्मा-नुराग अद्वितीय है। वृद्धावस्था मे भी आप अथक परिश्रम करके श्रीसघ को शुभ कार्यो की मगलप्रेरणा दे रह हैं, अनेकानेक शुभ कार्यो मे सक्रिय मागदशन कर रहे हैं, इसका स्रोत है—आपका निमल-चारित्र और निष्काम सेवा भक्ति। ऐसे सद्गुरु के चरण-कमलो मे कोटि-कोटि वन्दन।

वदो गुरुपद कन्ज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।